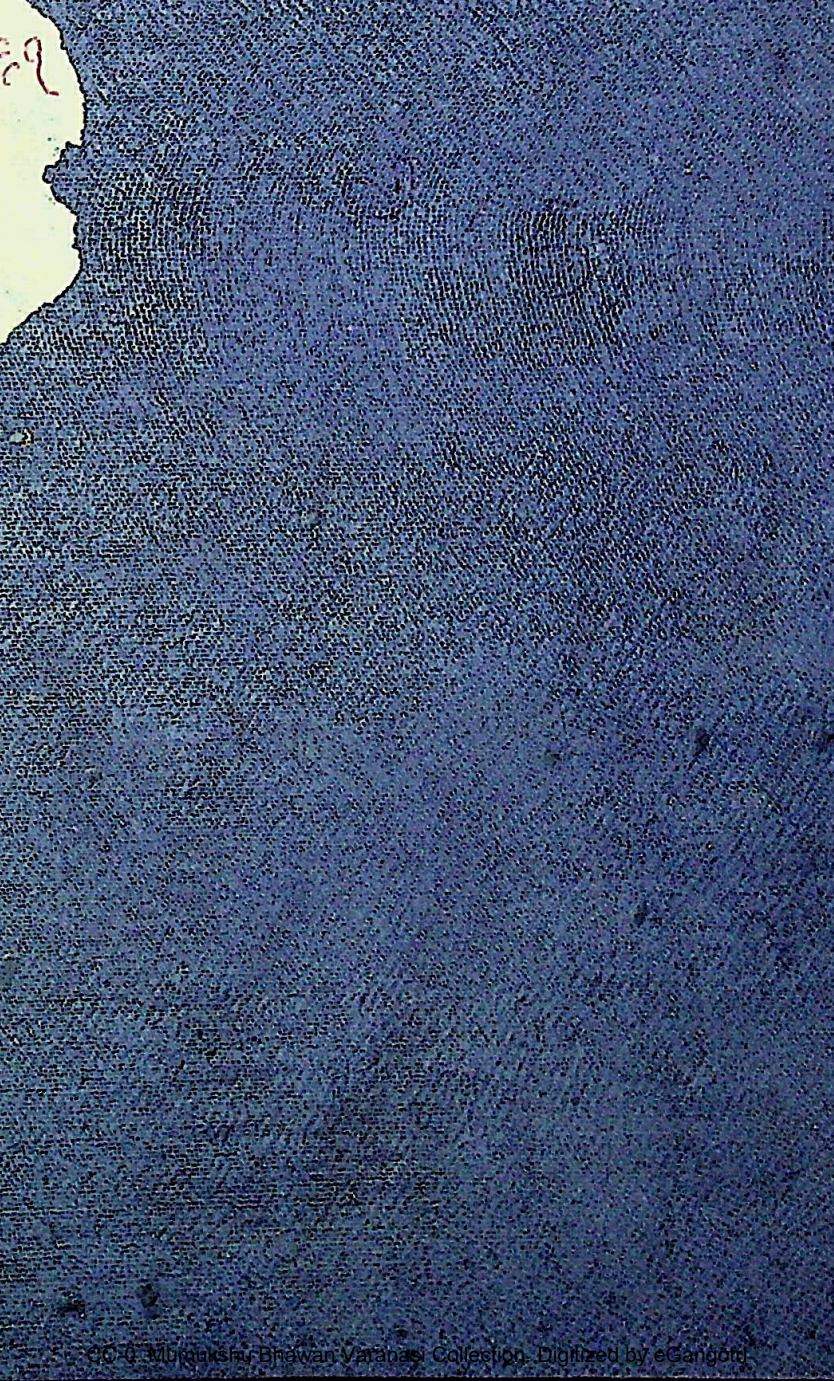




9/9/11

॥ श्रीः ॥



निर्द्वन्द्वमुखभंगचपेटिका

“सेयम्”

श्री १००८ श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य वेदान्त-
प्रवर्तकाचार्य श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य
सत्सम्प्रदायाचार्य जगद्गुरु भगवदनन्तपादीय
श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्य स्वामिना
सम्पादिता ।

॥ तथाचेयम् ॥

श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रवास्तव्येन
पं० सुदर्शन ब्रह्मचारिणा प्रकाशिता ।

प्रथम संस्करणम् १००० सं० १९९५ वि०

॥ श्री ॥

॥ श्रीमते यतीन्द्राय नमः ॥

अथ निर्द्वन्द्व सुख भंग चपेटिका

सव्यं पादं प्रसार्याश्रित दुरितहरं दक्षिणं
कुञ्चयित्वा- जानुन्याधाय सव्येतरमितर भुजं
नागभोगे निधाय । पश्चाद्वाहु द्वयेन प्रतिभट
शमने धारयन् शंखचक्रे, देवी भूषादि जुष्टो
वितरतु जगतां शर्म बैकुण्ठनाथः ॥१॥

श्रीशं श्रीसैन्यनाथं वकुलधर मुनिं नाथ पंके-
रुहाक्षौ । श्रीरामं यामुनेयं वरमपि च महापूर्ण
रामानुजायौ ॥ गोविन्दं भट्टवेदान्त्यथ वरकलिजि
द्वंशदासांश्च कृष्णं लोकार्यं शैलनाथं वरवर
मुनिमप्यन्वहं चिन्तयामि ॥ २ ॥

पाषण्ड षण्ड गिरिखण्डन वज्रदण्डाः प्रच्छन्न-
बौद्धमकरालय मन्थदण्डाः । वेदार्थसार सुख-
दर्शन दीपदण्डा रामानुजस्य विलसन्ति मुने-
स्त्रिदण्डाः ॥३॥

आदरणीय विद्वद्बृन्द ! 'एवं गुणीगण मंडली मंडल मंडन सज्जनगण !

दिगन्तव्यापिनी यतिराजकि विभूतिको उत्तरोत्तर बढ़ती हुई देखकर "देखि न सकहिं परायिविभूति" इस कथनानुसार नहीं सहन करिके त्रिदण्ड ग्रहणके निन्दात्मक "यतिधर्म संग्रहः" और यति धर्म निर्णयः" नामके पुस्तकोंको मुण्डियोंने बनाया इसके बाद पूर्वोक्त दोनों पुस्तकोंके पोल दिग्दर्शन कराता हुआ मैंने एक चक्रापुरी (आरा) से उत्तर गंगाके तट पर सिनहा ग्राममें वार्षिक मासमें निवास करिके "यतीन्द्र धर्म मार्तण्डः" नामके ग्रन्थको सम्पादन किया । और मेरे कहनेसे जिला शाहाबाद पोस्ट चकिया साकिन बन्धु छपरा निवासी श्रीमान् मुखलाल साहने वि० सं० १९८५ में मुद्रित कराके मूल्य सद्व्यवहार करिके काशी तथा प्रयागमें महती मेलाके अवसर पर संन्यासियोंके बाड़ाओंमें वितरण करवाया । कई वर्ष व्यतीत हो गये कोई भी उस ग्रन्थका विरोधमें लेखनी नहीं उठाया परंतु कराल कलिकाल का प्रभाव से एक दण्डी और त्रिदण्डी स्वामियोंमें तथा समस्त जनतामें दंगा फरसाद कराने की इच्छासे "करतव वायस वेष मराला " इसके अनुसार एक दंडी वेषधारी निर्द्वन्द्वाश्रमजीने "विद्वज्जन विचार पत्रम्" नामके उन्तिस पेजका पत्र "यतीन्द्र धर्ममार्तण्डः" ग्रन्थका विरोध में लिखा है । और उस पत्रको "यादृशी शीतला देवी तादृशः खरवाहनः " इसके अनुसार कोलाहल प्रिय नृसिंहाश्रमजीने हिन्दु-

स्थान प्रेस मछुआ बाजार स्ट्रीट कलकत्तामें मुद्रित कराके प्रचार वि० सं० १६६४ में किया है। पूर्व्वोक्त पत्रका खण्डन लिखनेके लिये कलकत्ता में मुझसे बहुत अनुरोध को तो मैंने कहा कि “खलगह अगुण साधु गुण गाहा” इसके बाद मैंने पैदल जगन्नाथपुरीमें आया तो यहां पर श्री जगदीश भगवानके चन्दन यात्रोत्सवमें हजारों श्रीरामभक्तोंने गोष्ठीके मध्यमें कहा कि श्रीमान् “निर्व्वन्द्वमुख भंग चपेटिका” अवश्य लिखिये। वस इस बातको सुनकर भागवतोपचारके भयसे “रामसे अधिक रामके दासा” इस बातको अनुसंधान करिके पूर्व्वोक्त चपेटिका को मैं लिखता हूं। इसमें “विद्वज्जन विचार पत्रम्” की पंक्ति और पृष्ठ लिखकर चपेटिका दीं जायेगी। इस विषय में “क्षमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई सुनिहहिं बाल वचन मनलाई” इस कथनानुसार सज्जन लोग मेरे पर सदा क्षमा रखेंगे।

सर्वे कुशालिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु न कश्चिद्दुःखभाग भवेत् ।

“विद्वज्जनविचार पत्रम्” पृ० १ पं० २ सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे ।

“चपेटिका”—धन्य हैं निर्व्वन्द्वजी आप अपना पत्रके सत्र-हवां पृष्ठ में एक ब्रह्म को सत्य और जगत् को मिथ्या लिखते हुए अपने को ब्रह्म लिखते हैं। और यहां पर वादरायण महर्षि को तथा शंकराचार्य को वन्दना करते हैं। भला आपको विचार करना चाहिये कि दो महापुरुषों कि वन्दना मैं करता

हूँ तो दो वे हुवें और एक वन्दना करनेवाला मैं हुआ तो तीन हो गये। और व्याकरणका गन्ध भी नहीं आपमें है नहीं तो आप विचार करते कि एक कालमें एकही करता तथा कर्म किस सूत्र से होगा। आप ने वन्दना करिके अपने से अपना सिद्धान्त को खण्डन कर दिया क्या भंगके तरङ्गमें मंगलाचर किया था। आपको कानमिमोर कर मुखतोड़ कोई थप्पर मारनेवाला नहीं था कि वेद शास्त्र इति हास पुराणादिक को मिथ्या बताकर फिर उसी मिथ्या वस्तु को प्रमाण मानते हो जड़ा भी तो विचार करो कि क्या मिथ्या वस्तु वन्ध्या पुत्र किसी के गवाह हो सकता है नहीं नहीं। खैर जिस वादरायण महर्षि को अभिवादन किये हो उस महर्षि के वाक्य को तो जड़ा देख लो कि तुमको क्या कहे हैं ॥

मायावामिसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्ध उच्यते ।

मयैव कथितं देवि कलौ ब्राह्मणरूपिणा ॥

पाञ्च उत्तर खं० ६ अ० २३६ श्लो० ७ आ० ।

अपार्थं श्रुतिवाक्यानां दर्शयन् लोकं गर्हितम् ।

स्वकर्म रूपं त्याज्यत्वमत्रैव प्रतिपाद्यते ॥

सर्वकर्मपरिभ्रष्टैर्वैधर्मत्वं तदुच्यते ।

पेश जीवपारैक्यं मया तु प्रतिपाद्यते ॥

ब्रह्मणोऽस्य स्वयं रूपं निगुणं वक्ष्यते मया ।

सर्वस्य जगतोऽप्यत्र मोहनार्थं कलौयुगे ॥
वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायया यद्वैदिकम् ।
मयैव कल्पितं देवि जगतां नाश कारणात् ॥

मायावाद झूठा शास्त्र है उसको प्रच्छन्न बौद्ध कहते हैं, हे देवि कलिमें ब्राह्मणका रूप धारण करके मैंने ही मायावादको कहा ॥ ७ ॥ वेद वाक्यों का असत्य अर्थ दिखाते हुए लोक से निन्दित अपने कर्म का परित्याग करना चाहिये ऐसा 'माया-वादमें मैं कहा हूँ ॥ ८ ॥ सब कर्मोंसे परिभ्रष्ट होनेसे वह वैधर्म कहा जाता है और मायावादमें ब्रह्म तथा जीव एक ही है ऐसा मैंने कहा है ॥ ९ ॥ कलियुगमें समस्त जीवोंके मोहनेके लिये मैं रुद्र परब्रह्मके गुणसे रहित रूप कहूँगा ॥ १० ॥ वेदार्थके तुल्य जो अवैदिक महाशास्त्र मायावाद है उसको माया द्वारा हे देवि संसारका नाश करनेके लिये मैंने ही बनाया ॥ ११ ॥ इन वाक्यों से स्पष्ट साबित होता है कि तुम प्रच्छन्न बौद्ध हो ।

विद्वज्जनविचा० पृ० २ पं० १ त्रिदन्डी विष्वक्सेनाचार्यजी बलिया प्रान्त वो आरा प्रान्तमें प्रायः गंगाजीके तटपर रहते हुए यज्ञादिक किया करते हैं ।

चपेटि०—निर्द्वन्द्वाश्रमजी "मद्यपाः किं न जल्पन्ति" इसके अनुसार जो कुछ आप कह दें कोई भी आश्चर्य नहीं है । क्या आपके पिता चारिदर्जातक भी हिन्दी नहीं पढ़ाये या आप अपनी दुष्टता से पढ़े ही नहीं । यदि आप कुछ भी अध्ययन

किये होते तो ज्ञात होता कि यूपी प्रान्त में बलिया जिला है और बिहार प्रान्तमें आरा जिला हैं। धन्य हैं जो कि आप ऐसे देवानां को एक दण्ड दे दिये। यदि आज क्षत्रियोंका राज्य होता तो ॥ अरुमुखान्यन्तीन्सालावृकेभ्यः प्रायच्छम् ॥ कौषतकिब्रा० आ० ३ श्रु० १ ॥ इस उपनिषद्के अनुसार आपको सालावृकके लिये दे दिया जाता। धन्य निर्लज्ज हो कि प्रान्त और जिलाका अभी ज्ञान नहीं है तौ भी लेखनी उठा लिया। और जो तुम यह लिखते हो कि बलिया और आरा जिलामें रहते हैं इसमें क्या इसका कोई प्रमाण हैं नहीं फिर झूठा क्यों लिखा “नहीं असत्यसमपातक दूजा” अब जड़ा तुम पटल खोककर देख लो सप्रमाण मैं बतलाता हूं जिसमें कि तुम को चूं कहने का भी जगह नहीं है। मैं वि० सं० १६८१ में काशी यवनपुर फैजाबाद अयोध्या होता हुआ :सरयू बागमें वर्षाकालमें ठहरा था उस समय वहां पर व्याकरणाचार्य देवप्रभाकरशास्त्रीजी प्रधान प्रबन्धकर्ता थे। इसके बाद मैं वि० सं० १६८२ में लखनऊ नैमिषारण्य हाथरस मथुरा नन्दगांव बरिसाने गोवर्द्धन होता हुआ वृन्दावनमें ठहरा था उस समय मेरे लिये समुचित प्रबन्ध वेदान्त तीर्थ पं० श्रीधराचार्य शास्त्रीजी किये थे। तत्पश्चात् मैं वि० सं० १६८३ में कुरुक्षेत्र पुष्कर द्वारिका गिरिनाल सुरति होता हुआ बम्बई अठासी नम्बर फानसवाड़ीमें ठहरा था उस समय इस अकिंचन के लिये श्री १००८ श्रीमद्भवेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्योभय वेदान्त प्रवर्तकाचार्य श्रीमत्परमहंस परिव्राजका-

चार्य सत्संप्रदायाचार्य जगद्गुरु भगवद्रामानुजपादीय श्रीकाञ्ची प्रतिवादी भयङ्कर मठाधीश श्री मदनन्ताचार्य स्वामीजी महाराज उपदेश रत्नप्रदान किये थे। इसके बाद मैं पुना लातूर जानौरा राजौरा अमरावती वरदा इङ्गनघाट नागपुर औरङ्गाबाद होता हुआ जालनामें गया और वहां पर महामहोपाध्याय पं० गोविन्द शास्त्रीजी स्त्रियों को यज्ञोपवित दिये थे उस विषयमें तीन दिन मुझसे और शास्त्रीजीसे पूर्ण विद्वत्ता पूर्वक शास्त्रार्थ हुआ अन्तमें 'सत्यमेव जयते नानृतम्' मुण्डको मुण्ड० ३ खं० १ श्रु० ६ ॥ इसके अनुसार कुर्तकोटि परमहंस परिव्राजकाचार्य जगद्गुरु श्रीमच्छंकराचार्य और पूर्वोक्त जगद्गुरु प्रतिवादिका भयंकराचार्य स्वामीजी जालनामें पधारकर इस अर्किचनका ही विराट सभामें विजय सावित किये। इसके बाद मैं चित्रकुट प्रयाग बिन्ध्याचल होता हुआ काशी से पूरव काँवर ग्राममें वि० सं० १६८४ में चातुर्मास व्यतीत किया और वहां पर आश्विन पूर्णिमाके मारुती मख सम्पादन करवाया अनन्तर मोजफरपुर दरभङ्गा जनकपुर बुटवल मुक्तिनारायण होता हुआ मैं वि० सं० १६८५ में सीनहा ग्राममें चतुर्मास भर रहा और वहां पर श्री यज्ञ करवाया। तदनन्तर भवानी-टोला यमुनीटोला नीलकण्ठटोला बभनगांवा पन्नापुर पटना फतुहा बाहापुर करौता बखतियारपुर रूपस होता हुआ मैं वि० सं० १६८६ में जिला बलिया पोष्ट दलन छपरा साकिन बाजितपुर में वर्षाकाल बिताया और "वैदिकयोग संग्रहः"

ग्रन्थको निर्माण किया तथा चलनेके समय एक विराट् यज्ञ करवाया। इसके बाद वीरपुर सेरपुर रामपुर ५ हरिहरपुर होता हुआ गौसपुरमें ठहरा था कि मोहमदाबाद में आर्यसमाजवालों से तथा सनातनधर्मवालोंसे शास्त्रार्थ छिड़ गया। जिसमें मुझको जाना पड़ा और मूर्ति पूजाका विषयमें विवेकानन्दजी से तथा मुझसे शास्त्रार्थ हुआ जिसका स्मारक “वैदिक मूर्ति पूजादर्शः” नामके ग्रन्थको जिला गाजीपुर मोकाम खालिसपुर निवासी व्याकरणाचार्य पं० जगन्नाथशर्माजी मुद्रित कराके प्रकाशित किये हैं। इसके बाद गाजीपुरमें मैं ठहरा था कि फिर उभय दलमें शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ अन्तमें सब भक्तोंके कहने से मैं भी गया और हरिशंकरि महल्ला गाजीपुरमें श्राद्ध का विषयमें शास्त्रार्थ हुआ मुनीश्वरानन्दजी से और मुझसे जिसमें विक्टोरिया संस्कृत विद्यालयका प्रधानाध्यापक व्या० आ० पं० रामलषणशर्माजी जिलास्कूल हेड पं० काव्य ती० बिक्रमादित्यशर्माजी व्या० आ० पं० हरिद्वारशर्माजी और सा० का० तीर्थ वाराणसी शर्मा वकील आदिक चार हजार मनुष्य थे। जिस शास्त्रार्थ स्मारक “वैदिक श्राद्ध दर्पणम्” नामके ग्रन्थको जिला गाजीपुर साकिन मैनपुर निवासी दैवज्ञ पं० महावीरशर्माजी अंक न करके प्रकाशित किये हैं। उस सम्वत् में गाजीपुर जिलामें गंगा तटवाले सब ग्रामोंमें रहता हुआ मैं वि० सं० १९८७ में खालिसपुरमें वर्षा भरि निवास किया और चारो वेदोंको मगवा करके एक वैदिक क्रतु वहां

पर सम्पादन करवाया । इसके बादमै' गया राजगृहना भी गया साक्षी गोपाल जगन्नाथ श्रीकूर्म पाद गया पन्नानृसिंह श्रीवैकटेश आदिके में भ्रमण करता हुआ वि० सं० १६८८ में जि०शाहाबाद मो० एकौनामें वर्षातमें निवास किया और "शास्त्रार्थदीपिका" नामके ग्रन्थको लिखा तथा अन्तमें एक महान् यज्ञ करवाया । इसके बाद चन्धु छपरामें दो महला मकान बनवाकर उसमें "श्रीविष्णु" विद्यालय स्थापन करवाया तदनन्तर बबुराग्राममें "नारायण" विद्यालय स्थापन करवा करके सलेमपुर ईश्वरपुरा नैनोजोर सपहीं आदिक ग्रामोंमें रहता हुआ वि० सं० १६८९ में जिला आरा साकिन पाण्डेपुर तेजमें वार्षिक मासोंमें निवास किया । और आलवन्दार स्तोत्र की टीका "भावप्रकाशिका" बनाया तथा वहां पर बड़ा समारोहसे हरिहर यज्ञ करावाया ६ । इसके बाद छपरा रावलटोला सबलपुर आमी मलखाचक ककरियां सोनपुर आदिकमें घूमता हुआ मै' वि० सं० १६९० में जिला सारन मोकाम सिताबदियरा बाबू गरीवासिंह के टोला में वर्षातभर निवास किया और अर्थ पंचक के "मर्मबोधिनी" टीकाको बनाया तथा चलने के समय वहांपर महाविष्णु यज्ञ करवा करके "रामकृष्ण" संस्कृत विद्यालय स्थापन करवाया । तदनन्तर हरिहरक्षेत्र सीताकुण्ड मन्दार-मधुसूदन मायापुर नवद्वीप शान्तिपुर गंगासागर आदिक स्थलों में पर्यटन करता हुआ मै' वि० सं० १६९१ में जिला साहाबाद मो० सोनवर्षा में चतुर्मासभर निवास किया और श्रीवचनभूष-

णम् की टीका “चिन्तामणि” किया तथा वहां से चलनेके समय गौतम याग करवाया । तत्पश्चात् गोरखपुर आजमगढ़ वस्ती गोण्डा आदिक जिलामें भ्रमण करता हुआ मैं वि० सं० १९६२ में जिला आरा साकीन बहोरनपुरमें वर्षातभर निवास किया और वहांपर पुरषोत्तम मख करवाया । तदनन्दर शिवपुर सेमरियामें “लक्ष्मीनारायण” विद्यालय स्थापन करवाकर हल्दी रुद्रपुर गायघाट जवहीं कुलपति छपरा आदिक ग्रामोंमें ठहरता हुआ मैं वि० सं० १९६३ में जिला बलिया मोकाम नगवामें वर्षातभर निवास किया और वार्त्तामालाकी “चूड़ा-मणि” टीका को निर्माण किया तथा वहांपर महानारायण याग करवाया जिसको तुम भी देखे हो । इसके बाद भृगुक्षेत्र धर्मारण्य सिद्धाश्रम (वक्सर) अहिरवली ब्रह्मपुर सारङ्गपुर नथमलपुर नेकनाम टोला आदिक ग्रामों में निवास करता हुआ सिनहानिवासियों के अत्यन्त प्रेम से मैं पुनः वि० सं० १९६४ में सिनहा ग्राममें चतुर्मास पर्यन्त निवास किया और लाखो जनताका सहयोग से महानारायण यज्ञ करवाया तथा “अनन्त” संस्कृत विद्यालय वहां स्थापन करवाया । इसके बाद शाहाबाद पटना मुगेर भागलपुर दुमका मैशिदाबाद नदीया वरदवान हुगुली चौविस परगना हवड़ा कलकत्ता मेदनापुर वालेश्वर कटक जगन्नाथपुरी इन जिलाओं में पैदल यात्रा करता हुआ मैं वि० सं० १९६५ में जगन्नाथवल्लभ वाटिकामें निवास किया हूँ । इससे तुम्हारे ऐसे दलीलवाजके सिवाय

अन्य कोई भी सज्जनपुरुष नहीं कह सकता है कि बलिया और आरा जिलामें केवल मैं रहता हूं। विद्वज्जनवि० पृ० २ पं० ३ श्रीशंकरजी के पूर्ण विरोधी है। पृ० ६ पं० ६ शिवके पूर्ण द्रोही और परिनिन्दक है।

चपेटि०—निर्व्वन्द्व क्या तुम्हारा जो नगवामें दशदिन तक मैं पूर्ण सत्कार करवाया था उसका फल शिवभक्तोंसे और मुझसे प्रेम छुटना ही है तो क्यों नहीं लिख दिया कि शिव की मूर्तिको तोड़ता हुआ त्रिदण्डी को मैं देखा हूं। धन्य हो भगड़ा लगानेवाले सत्य यह लेख हैं कि “वायसपालिय अति अनुरागा। होहि निरामिष कवहुँ कि कागा॥” भला तुमको विचारना चाहता था कि शंकरजीका पूर्ण विरोधी यदि मैं होता तो शिवके अनन्य भक्त नगवा हरलाल छपरा निवासी कर्मठ पं० रामनरेश ब्रह्मचारीजी मेरी सेवा करते और मुझको यदि शिवजीसे विरोध होता तो कई बार उनके स्थान पर जाता और बाजितपुरमें ठण्डा होकर पकड़ीतर शिवजीका चौतारा बनवाता तथा शिवालय परमहारद्व यज्ञ करवाता। और सिनहा निवासी बाबू रामविलाससिंह बिये के निमित्त पं० केदारनाथ त्रिपाठी से चौबीस लक्ष महामृत्युञ्जयका जप करवाना। तथा महामृत्युञ्जय यज्ञ कर- और यदि हरसे मुझको द्रोह होता तो वि० सं० १६८६ में पाण्डेपुर तेजमें हरिहर यज्ञ करवाता। यदि तुमको संदेह हो तो जहां जहां मैं कहा हूं वहां जाकर तुम पूछ सकते हो परन्तु

तुमको तो कलह प्रिय है। और देखो सोनवर्षामें एक शिव लिङ्ग बहुत दिनों से मैदान में पड़ा था उसको पक्का यागशाला बनवाकर रखवा दिया हूँ। और गाजीपुर जिला साकिन सैदपुरमें एक नास्तिक शिव पूजकों को गद्दा बताया था उस भानु प्रतापशास्त्रीसे और मुझसे वि० सं० १६८७ में शिव विषय पर पांच सहस्र मनुष्यों के सामने शस्त्रार्थ हुआ और हारकर सवेरे शास्त्रीजी वहांसे भग गये। जिस शास्त्रार्थमें रामपुर संस्कृत वि० प्रधा० व्या० आ० पं० जितबन्धनशास्त्रीजी भी थे। भला तुमको झूठ लिखते जरासा भी लज्जा नहीं लगी खैर ॥ समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति ॥ प्रश्नो० प्रश्न० ६ श्रु० १ ॥ इसके अनुसार फल अवश्य तुमको मिलेगा। शिवद्रोही मैं नहीं वस्तुतः शिवद्रोही तुम हो क्योंकि तुम शिवको नहीं मानते हो बल्कि अपने को ही “शिवोऽहम्” इस वाक्यसे शिवमानते हो भला बतावो शिवका पांच मुख तीन नेत्र शास्त्र वर्णन करता है तुम्हारे में है कि लण्ठराज शिव बनते हो। और शिवजी तो कालकूट पान किये हैं तथा वासुकिको बलय बनावे हैं। यदि तुम भी शिव हो तो एक छटा कभी तो संखिया खालो और गेहुवन सर्पको भी जरा बलय बना लो कि दूसरेकी निन्दा करनेका फल प्राप्त हो जाय। तुम शिवद्रोही हो क्योंकि शिव का भोग लगाया नहीं खाते हो और शिवके चरणोदकको नहीं पीते हो तथा शिवकी आज्ञाको उड़घन करते हो और साष्टांग

प्रणाम भी नहीं करते हो बल्कि शिवालयमें जाकर शिवजीका शिरपर दण्ड रखते हो। भला तुमको विचार करना चाहिये कि दर्शनका व्याज से कोई जाठ तेरे निवास्थानमें जाकर तेरे शिर पर लाठी रख दे तो कैसा मालूम होगा और भी देखो तुम कहते हो कि मैं शिव हूँ तो शिवजीकी स्त्री जो गौरोदेवीजी हैं उनको अपनी स्त्री बना चुका और शिवजीके पुत्र जो गणेश तथा षडानन हैं उन लोगोंको पुत्र बना चुका। ख्याल रखना पक्का शिवभक्त इस चालसे चमेटा द्वारा तेरा मुख तोड़ देगा।

विद्वज्जन वि० पृ० २ पं० सर्व सम्प्रदायोंके महा निन्दक है जैसी निन्दा इन्होंने लिखी है वैसी निन्दा आज तक किसी आचार्य वा विद्वानने नहीं लिखी है। पं० ५-६ तक।

चपेटि—निर्द्वन्द्वजी सब सम्प्रदायके जन आपसे कहे थे या अपने मनसे गढ़कर मुझको महानिन्दक बतलाया सब सम्प्रदायके जनके पूर्ण पताके साथ नाम तुमने क्यों नहीं लिख दिया। नहीं लिखनेसे ज्ञात होता है कि अपने मनसे गढ़कर महानिन्दक लिखे हो। जरा तुमको विचारना था कि यदि मैं निन्दक होता तो गत वर्षके सिनहाका महानारायण यज्ञमें तेरे ही मतके ये अधोलिखित महन्त कभी भी उस यज्ञमें सहयोग देते। वे महन्त ये हैं सिनहाकवल छपरा निवासी महन्त दीन-दयालगिरि। एकौनानिवासी महन्त राघवानन्दगिरि। बिन-गाँवा निवासी महन्त रामलोचनगिरि। बेलवँटी निवासी महन्त सुदामागिरि। फूहानिवासी महन्त। शिवशंकरगिरि। साहपुर

निवासी । महन्त जगन्नाथगिरि । कान्हा छपरा निवासी । महन्त रघुनन्दनगिरिजी । फिर कैसे महानिन्दक तुमने लिखा । जौर जरा देखो एक दण्डीके लिये कितना परिश्रम मैं किया हूँ सो यहां बताता हूँ । जिला गाजीपुर साकिन मैनपुरमें दैवज्ञ पं० वैद्यनाथोपाध्यायके द्वार पर एक दण्डी सुदर्शनानन्द सरस्वतीजी वि० सं० १६८७ में रहते थे । एक समय उन्होंने गंगाके तटपर एक दण्ड रखकर पैखाना होनेके लिये गये कि एक आर्य-समाजी एक दण्ड तोड़कर फेंक दिया फिर दूसरा दण्ड बनाकर वहांसे सुदर्शनानन्द सरस्वतीजी चले गये । इसके इसके बाद काशीसे भ्रमण करता हुआ मैं माहेपुरमें आया और बाबू अनिरुद्धसिंहसे सब समाचार ज्ञात हुआ तब मैंने घोषणा वहां पर करवाई कि आर्य-समाजका सिद्धान्त अवैदिक है जिसकी इच्छा हो वह पूर्वोक्त विषय पर शास्त्राथ कर सकता है । अन्तमें वहांके आर्य समाजियोंने काशीसे अखिलानन्द ब्रह्मचारीको बुलाया और बाबू दुर्गासिंहकी कोठीके सामने डिप्टी कलकूर बाबू बंगवहादुरसिंहकी अध्यक्षतामें दश हजार मनुष्योंके सामने मुझसे और पूर्वोक्त ब्रह्मचारीसे शास्त्रार्थ हुआ और अन्तमें युक्ति तथा प्रमाणसे आर्य समाजका मत खण्डित हो गया । भला सोचो इतनानेकी तेरे मतके साथ मैं किया हूँ तो भी “गाल बजावत तुम्हें न लाजा” । अब जो कि तुम ने लिखा है कि जैसी निन्दा इन्होंने लिखी है वैसी निन्दा आज तक किसीने नहीं लिखी है । इस विषयमें तेरा कथन

“बातुल भूत विविश मतवारे ते नहि बोलहि बचन सँभारे” इस वाक्यके अनुसार ही है। क्योंकि मैं तो एक भी निन्दा नहीं लिखा हूँ बल्कि महर्षियोंके वाक्योंको आध्याय आदिकसे युक्त उद्धृत करके अनुवाद कर दिया हूँ। धन्य आप आर्य-समाजियोंके पक्षपाती हैं कि “सत्यार्थप्रकाश” ऐसा निन्दात्मक पुस्तक रहते हुए मेरे विषयमें इतना कटाक्ष झूठा किया। भला युक्ति विशारद पं० कालूराम शास्त्रीजीको या कविरत्न पं० अखिलानन्दजीको गवाह तुम मानोगे कि सत्यार्थप्रकाशसे बढ़ कर हिन्दुओंके बनाये हुए ग्रन्थोंमें कहीं पर भी निन्दा है। ठीक एक दण्डधारी प्रच्छन्न आर्य-समाजीका नकल भी तुममें पाया जाता है क्योंकि जैसे वे लोग आपसमें अभिवादन और प्रत्यभिवादन दोनोंमें “नमस्ते” कहते हैं वैसे ही तुम भी एक दण्डियोंमें अभिवादन और प्रत्यभिवादन इन दोनोंमें शास्त्रसे विरुद्ध “ॐ हरि” कहते हो तथा जैसे आर्यसमाजियोंने पोप यह शब्द संकेत कर रक्खा है वैसे ही तुम भी “योगपट” यह शब्द संकेत कर रक्खा है। भला एक भी तो आर्य ग्रन्थका प्रमाण दे दो कि योगपटनामको कहते हैं। न मालूम क्या कारण है कि जिस ग्रन्थ के लिये काशीमें दशनामियों से तथा उदासियों से महान् कोलाहल मचा था उस “श्रौतमुनिचरितामृत” में आपको निन्दा नहीं ज्ञात हुआ और उसके विरोधमें कुछ नहीं लिखा। “यतीन्द्रधर्ममार्तण्डः” ग्रन्थमें सबके सबसे बढ़कर निन्दा तुमको ज्ञात हुआ तथा चट लेख विरुद्ध लिख दिया यह ठीक

कहा है कि ॥ विनाशकाले विपरीत बुद्धिः ॥ वृद्धचाण० अ०
१६ श्लो० १७ ॥ इसके अनुसार विपरीत बुद्धि तेरी हो गयी
है। इस चपेटिकाके मिलनेपर “पुनि पछतयिहो अन्त अभागी”
यही दशा सम्भव है कि तेरी होगी।

विद्वज्जनवि० पृ० २ पं० ८ से १७ पर्यन्त ॥

बौद्धान्धकार परिहार दिवाकराय
श्रीवैष्णवाम्बुनिधिपूर्ण निशाकराय ।
अद्वैतवादिकरियूथमृगाधिपाय
तस्मै नमोऽस्तु सततं यतिपुङ्गवाय ॥

अर्थ—बौद्धरूप अन्धकार को नाश करने के लिये सूर्यके
सदृश और श्री वैष्णवरूप समुद्रको विकसित करने के लिये
पूर्ण चन्द्रमाके सदृश और गज यूथ रूप अद्वैतवादियों को
पराजय करने के लिये सिंहके सदृश जो यतिराज भगवान हैं
उनको मैं नष्टाङ्ग प्रणाम करता हूँ ॥ इस अर्थको कई विद्वानोंने
उपहास दृष्टि से देखकर कहा कि विकसित अर्थ पुष्पोंमें
शोभित होता है। समुद्रमें विकसित अर्थ किसी तरह भी
नहीं बन सकता है।

चपेटि०—तुमको “यतीन्द्रधर्ममार्तण्डः” ग्रन्थके पंचमोल्लासका
पहला श्लोक से बहुत चीड़ सावित होता है क्योंकि प्रथम
सबसे इसी पर तेरी लेखनी उठी चारि प्रथमके उल्लासको छोड़
दिया। खैर याद रखना यह श्लोक मेरा बनाया नहीं है।

बलिक “श्रीब्रह्मसंहिता” में जो “रामानुजवैभवस्तोत्र” है उस स्तोत्रका पन्द्रहवां श्लोक है। तुम विद्वानोंको क्यों कहते हो अपने को कहो कि मैं उपहास दृष्टि से देख कर कहा। अच्छा तुम उपहास किया करो उससे “खल परिहास होत हित मोरा काक कहहि कलकण्ठ कठोरा” इसके अनुसार मेरा हित ही है। यह जो तुमने लिखा कि विकसित अर्थ पुष्पोंमें शोभित होता है। समुद्रमें किसी तरह भी नहीं बन सकता है। तो इसमें कोई प्रमाण क्यों नहीं लिख दिया। देखो चँवरमें भी विकसित शब्दका प्रयोग आया है ॥ विकसितकाशचामरः ॥ रघुवं० ॥ और लोकमें देखो देवदत्तका मुख विकसित है तथा चन्द्रमा कि चाँदनी विकसि रही है और सनातन धर्मका विकास कैसा है इत्यादिक फूलसे अन्यत्र भी विकसित शब्दका प्रयोग पाया जाता है। और शब्दों के अनेक अर्थ होनेसे वर्धन या हर्षणके अर्थवाचक होकर विकसित शब्द समुद्रमें भी अच्छी प्रकारसे बन सकता है जैसे कि ॥ राकापति रघुपति पुरी सिन्धु देखि हर्षान ॥ तुमको तो साहित्यका भी ज्ञान नहीं मालूम होता है फिर लेख कैसे प्रारम्भ किया।

विद्वज्जन वि० पृ० २ से ३ तक पं० १८ ॥ द्वादश उल्लासके आदिमें लिखते हैं कि यतिराज भगवानकी सरस्वतीसे सुरभित अन्तःकरणवाले सज्जनोंके चरणारविन्दोंको अपने नम्रशाली शिरके ऊपर रखता हूँ। और यतिराज से अन्य सिद्धान्तवाले और दुर्मदसे दग्धचित्तवाले वादियों के शिरपर मैं वामचरण

को रखता हूँ आपलोग देखिये । इस पुस्तकके उपक्रम और उपसंहारका कैसा योग मिलाया है ।

चपेटि०—निर्द्वन्द्वश्रम ! तुमने “यतीन्द्रधर्म मार्तण्डः” ग्रन्थके द्वादशोल्लासका पहला श्लोक लिखता हुआ डर गया कि केवल मेरा किया हुआ अनुवाद मात्रको ही लिखा । उस श्लोकसे तुमको डरना ठीक ही है क्योंकि वह श्लोक सर्व तंत्रस्वतन्त्रको कवितार्किक केसरी वेदान्ताचार्य स्वामीजीका बनाया हुआ जो “धर्तराज सप्तति” स्तोत्र है उस स्तोत्रका एक तालिसवां है । तुमने डरा तो क्या पूर्वोक्त महानुभावनिर्मित “शतदूषणी” ग्रन्थको देखकर कितनी शताब्दियों से तेरे पूर्वज भी डरे हुए हैं । भला डरता हुआ भी उस श्लोकको जड़ा देखलो मैं लिखता हूँ ।

यतीश्वर सरस्वतीसुरभिताशयानां सतां
वहामि चरणाम्बुजं प्रणति शालिना मौलिना ।
तदन्य मतदुर्मदज्वलित चेतसां वादिनां शिरस्सु
निहितं मया पदमदक्षिणं लक्ष्यताम् ॥ १ ॥

और तुमने “यतीन्द्रधर्ममार्तण्डः” ग्रन्थके पंचमोल्लासका पहला श्लोक को उपक्रममाना तथा द्वादशोल्लासका पहला श्लोकको उपसंहार माना । इससे तेरी विद्वत्ता का परिचय हो गया भला तुमको यदि पत्र लिखने की इच्छा हुई तो काशी के किसी पण्डित से उपक्रम और उपसंहार तो समझ लेना

चाहता था । छि छि ॥ अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः ॥ कठो० अ० १ वल्ली०२ श्रु० ५ ॥ इसके अनुसार अपनेको पण्डित माननेवाला तुम बिना उपक्रम और उपसंहार का ज्ञानसे कैसे निर्लज्ज पत्र लिखा ।

विद्वज्जनवि०—पृ० ३ पं० ७ दूसरी बात यह है कि जितनी इनकी पुस्तके हैं उन सबमें यही लिखा है कि श्री१००८ श्रीपरम-हंसपरिव्राजकाचार्य जगद्गुरु विष्वक्सेनाचार्य । पर विचार कर देखा जाय तो आप एक घरके भी गुरु नहीं हैं ।

चपेटि०--निर्द्वन्द्वजी तुम्हारे में यह ठीक घटता है कि “खलन हृदय अति ताप विशेषी जरहिं सदा पर सम्पति देखी ॥ पुस्तकोंके ऊपर जो टाईटल है सो भी तुमने झूठा ही लिखा क्योंकि “झूठै लेना झूठै देना झूठै भोजन झूठ चबेना” इसके अनुसार ही तुम हो । देखो इस प्रकार के लिखा हैं “श्री १००८ श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य वेदान्तप्रवर्तकाचार्य श्रीमत्परम-हंस परिव्राजकाचार्य सत्संप्रदायाचार्य जगद्गुरु भगवदनन्त पादीय श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्य” इस लेखका अर्थ ज्ञान तुमको नहीं है । यदि होता तो भूलकर भी पूर्वोक्त तीसरा पृष्ठका लेख नहीं लिखता । खैर अबसे भी जान लो जगद्गुरु भगवदनन्तका विशेषण है । भला तुमको तो अभी विशेष्य विशेषण का भी ज्ञान नहीं फिर तुम खण्डनके लिये कलम क्यों उठाया । मुण्ड मुण्डाने पर भी तुमने पक्षपात रहित नहीं विचार किया कि जिसका मत है कि “जगन् मिथ्या” अर्थात् जगत् झूठा है ।

वह पुरुष झूठा जगत् का गुरु कैसे हो सकता है। क्या मिथ्या जो बन्ध्या पुत्र हैं उसका कोई भी गुरु हो सकता है। नहीं नहीं वैसे ही जगन्मिथ्यावादी जगद्गुरु नहीं हो सकता है। ज्ञात होता है कि “आप एक घरके भी गुरु नहीं हैं” यह लेख मादक वस्तुको सेवन करके तुम लिखा था। नहीं तो जिस टाईटल को बड़े बड़े विद्वानोंने लिखा है उससे चिरुद्ध तुम नहीं लिखता। खैर जगद्गुरुके विषय में तेरा बड़ा दुराग्रह है इससे कतिपय सज्जनों के लेखोंको यहां पर मैं उद्धृत करता हूँ “देखि जुड़ावहु छाती” इसके अनुसार छातीको जुड़ालो। आज भारतमें एक बड़ी संस्था कान्फ्रेंस मानी जाती है उस संस्थाका मेम्बर कट्टर असहयोगी बाजितपुर निवासी पं० वासुदेव द्विवेदीजी वि० सं० १९८६ में “वैदिकयोगसंग्रहः” ग्रन्थको प्रकाशित किये हैं और जैसा टाईटल मैं पूर्वमें लिखा हूँ वैसाही वे भी लिखे हैं। फिर डेढ़ चावल का खिचड़ी तुम क्यों पका रहे हो। और जो कि एक दण्ड लिये थे उन शिवाश्रमजीके पौत्र व्या० आचा० खालिसपुर निवासी पं० जगन्नाथशर्माजी वि० सं० १९८७ में “वैदिकमूर्तिपूजादर्शः” ग्रन्थको प्रकाशित किये हैं तथा पूर्व कथनानुसार ही किताबको लिखे हैं। नहीं ज्ञात होता है कि तुम क्यों बकराके तीन टाँगके समान हठ नहीं छोड़ते हो। जिसका जि० आरा मो० बहोरनपुरका पुरुषोत्तम यज्ञमें आरा सं० महाविद्यालय ब्रह्मपुर सं० वि० धुरहुपुर सं० वि० नैनिजोर सं० वि० सुकुलपुरा

सं० वि० धवरी सं० वि० परशुरामपुर सं० वि० गोदना गौतम
सं० वि० सितावदियरा रामकृष्ण वि० मोजपफरपुर सं० विद्या-
लयके अनेक विद्वानोंके तथा सन्त महन्त और धनी मानियों
के मध्यमें सङ्गीत विशारद सां० यो० न्या० व्या० आचार्य पं०
देवनारायण शास्त्रीजी जो शुभाभिनन्द दिये थे उसको तो
जड़ा अवलोकन कर लो ।

॥ श्रीधृतनिशितविशिखो विजयतां रामः ॥

श्री १००८ श्रीमद्भवेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्य वेदान्तप्रवर्तका
चार्यश्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य सत्संप्रदायाचार्य जगद्गुरु
भगवदनन्तपादीय श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्य वर्य्याणां शुभाभिनन्दनम् ।

श्री—युक्तः श्री—सम्प्रदायानुगानां—

मान्—योऽनन्यः सर्वदा सज्जनानाम् ।

विष्—वक्सेना—चार्य पादोऽत्र नित्यं-

वक्—ता श्रौत—स्मार्त्ततत्त्वस्य सत्यम् ॥ १ ॥

से—व्यो भूयान् वैबुधानां व्रजानां-

ना—शं कुर्वन् दुर्मते नास्तिकानाम् ।

चार्—र्यं धर्मं चारयन्नृन् वितन्वन्-

य—ज्ञे यज्ञे शोपमो भात्ययं सन् ॥ २ ॥

त्रि—त्वं वीक्ष्य प्राकृतानां गुणानां—

दण्—डानां त्वं धारकोऽसि त्रयाणाम् ।
 डी—यन्तेऽशि—त्वा—ध्वरे ते प्रसन्नाः—
 स्वा—मिन् सर्वे पक्षिणश्चाविपन्नाः ॥ ३ ॥
 मी—ना दीना वारिलीना नवीना-
 जी—ना जाता जन्तवः प्रीति पीनाः ।
 म—र्त्या मर्त्याः सर्व एवाविहीना-
 हा—सोत्साहा—भ्यां भवन्तित्वधीनाः ॥ ४ ॥
 रा—जन्या वा राजकीया जना वा-
 ज—न्म स्वीयं सार्थयन्तो विशो वा ।
 की—र्तिं शश्वत् तेऽपि संकीर्त्तयन्तः—
 स—त्र प्रेक्षि क्षमाऽमरान् पूजयन्तः ॥ ५ ॥
 दा—न्तः शान्तः स्वान्तवेगावरोधी ।
 ज—न्तूच्छेत्तुर्यो यतिः सन् विरोधी ।
 य—ज्ञप्रेमी प्रेममूर्त्तिः क्रियावान्-
 हो—तृत्रातै—रावृतः स्तात् स धीमान् ॥ ६ ॥

श्रीमद्धनुर्धारी बुधासधामा श्रीदेवनारायण

मिश्र नामा । त्रिदण्डिसंन्यासिवरं भवन्तं हृदा-
भिनन्दत्यधुना नितान्तम् ॥ ७ ॥

वहोरनपुरस्थिताः सतततावकाङ्क्षि प्रिया
जना जनकवद्भवन्तमवगत्य शश्वद्धिया । पृथग्ज-
जनतया न किञ्चिदपि वक्तुमर्हा इमे नमन्ति ननु
केवलं निपतिता धरायां समे ॥ ८ ॥

दृगङ्गनन्देन्दुमिते सुवत्सरे दलेऽर्जुनेचाश्वि-
नमासि सुन्दरे । त्रिदण्डि संन्यासिवराय शोभनं
प्रदत्तवान् पद्यमयाभिनन्दनम् ॥ ९ ॥

आश्विनपूर्णिमायाम्	}	ले० सां० यो० न्या० व्या० आचार्य
वि० सं० १६६२		श्री देवनारायण शास्त्री
	}	गवं० सं० क्वीन्स कालेज बनारस ।

और नगवाके महानारायणयज्ञमें बनारस गवर्मेण्ट संस्कृत
काले० विश्वविद्याल० मारवा० सं० वि० गोयनका सं० वि०
विडला सं० वि० श्रीचन्द वि० वलिया युगुलि सं० वि० वलि०
यमुना सं० वि० वलि० सीतारामवेदवि० गङ्गहरा सं० वि०
सुखपुरा सं० वि० छाता सं० वि० पर शियां सं० वि० सिहाकुण्ड
सं० वि० गोरखपुर देवुरियां सं० वि० गया सं० विद्यालयके

विपश्चित्तोंके तथा अन्यान्य बकोल मुखतार डिण्टी मजिस्ट्रेटके समक्षमें जिनका पितृव्य सुखबोधाश्रमजि एक दण्ड लिये हैं उन साहित्यरत्न काव्य तीर्थ श्रीसरयूप्रसाद शास्त्रीजीका शुभाभिनन्दन को देखो ।

॥ श्रीः ॥

श्रीमताम् १००८ श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य—वेदान्त-प्रवर्त्तकाचार्य श्री मत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य सत्संप्रदाया-चार्य जगद्गुरु भगवदनन्तपादीयानां श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्य त्रिदण्डिस्वामिपादानां शुभाभिनन्दनम् ॥

श्रीमाञ् शु्रुतिस्मृतिपुराणविचारदक्षो भक्तैः
समर्चितपदः प्रथितः पृथिव्याम् । लोकोपकार-
निरतो विरतो विपश्चित्संराजतेऽत्रयतियोगि
वरस्त्रिदण्डी ॥ १ ॥

वाग्देवता वसति यस्य मुखारविन्दे शक्तिः
समुल्लसति यस्य करारविन्दे । पद्माधितिष्ठति
सदा हृदयारविन्दं सोऽयं विभाति यतिराड्
बिबुधाभिनन्द्यः ॥ २ ॥

पद्मासनस्थितमुदारधियं प्रकामं सत्कर्म-
निष्ठमनिशं सुयशोभिरामम् । जिज्ञासु पूज्यचरणं

शरणं प्रपद्ये यत्सेवनेन भुवने सकलार्थं सिद्धिः ॥३

येनात्र मोह रहिता जनताकृताऽऽस्ते य-
ज्ञादिकर्म विधिवत् क्रियते च येन । भूत भ्रमादि-
विपथाघहरं शरण्यं वन्दे त्रिदण्डिनममुं श्रित-
भक्तिमार्गम् ॥ ४ ॥

भृग्विश्रमार्गिकट एव पवित्र देशे गङ्गातटेऽत्र
नगवानगरे सुरस्ये । योगीन्द्र पण्डित सभास्वभि-
नन्दतित्वां विज्ञो द्विजेन्द्रसहितः सरयूप्रसादः ॥५

विजयदशम्याम्	}	ले० साहित्यरत्न काव्यतीर्थपाण्डेय
वि० सं० १६६३		श्रीसरयूप्रसाद शास्त्री "द्विजेन्द्रः"
		गणेशभवन दुबहण (बलिया)

और भी उसी सभामें विश्वविख्यातकाशी विश्वद्यालय
के विद्वान् का दिया हुआ अभिनन्दन पत्रको देखकर विवादको
परित्याग कर दो ।

॥ ॐ ॥

श्री १००८ श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्यो भयवेदान्तप्रवर्त
काचार्य श्री मत्परमहंसब्राजकाचार्य सत्संप्रदायाचार्य जगद्गुरु
भगवदनन्तपादीय श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्य स्वामिवर्याणां शुभा-
भिनन्दनम् ।

विदितनिखिल तत्त्वं वेदबोधानुगम्यं सकल
गुणगरीष्ठं भूसुरोद्धारहेतुम् । दलितभव विकारं
वेदबीजं जपन्तं नमति नमति विष्वक्सेन रूपं
यतीन्द्रम् ॥ १ ॥

श्रिया समेतं नुतया परात्परं श्रितं यतीन्द्रैः
सुतपस्तपस्विभिः । हन्त प्रजामङ्गलदं जगत्त्रये
हंसस्वरूपं तमहं समाश्रये ॥ २ ॥

स्वामी श्रीद्विजराज वंशतिलकः सदृशने
दर्शनः भूमौकश्चन कल्पवल्लिविलसत्सदानदर्पा-
पहः । चातुर्मास्यव्रतं समाप्य विधिना श्रीजन्हु-
पुत्र्यास्तटे कर्ताचारु समाप्तिकालिकमखं श्रीवै-
ष्णवो वैष्णवम् ॥ ३ ॥

स्वामिं स्तवेमं विभवप्रभावं वक्तुं न कश्चि-
त्प्रभुरस्तिलोके । ततोऽपि ते नाम जपन्ति
जाप्यं जनास्तु विन्दन्ति शिवं च लोके ॥ ४ ॥

विष्वक्सेनं मनसि सततं रामरामाभिरामं

स्वस्मिन् स्वस्मिन् हृदय कमले तारकं यच्च ज्ञेयम् ।
पश्यन् पश्यन् सकलफलप्रदं प्राणिनां श्रेयसेतु
गाङ्गं कौलमटति सदयो बोधयन् वेदमार्गम् । ५ ।

दिष्ट्या भारतभाग्यभूमिरनघ ज्ञानैकताने
घनः सौभाग्येन समुद्रसुन्दरयशाः सौजन्य सिन्धु
समः । विद्योद्यत्तरुणार्करश्मिरखिलाक्षमापाल
पूज्याङ्घ्रिजः स स्वामी सुरवृन्दपूजितपदोनः
पात्वहो योगिराट् ॥ ६ ॥

धीमन् यथामति कृतस्तवने महर्षे श्रीचन्द्र-
हारतनयेऽम्बिकाशर्ममिश्रे । अज्ञोक्त दोषमनवे-
क्ष्य यतस्ततो वा दृष्टिः कृपा रस भरा सततं
विधेया ॥ ७ ॥

विजयदशम्याम्	}	ले० व्या० सां० का० तीर्थ० न्यायशास्त्री
वि० सं० १६६३		पं० अम्बिकाप्रसादमिश्रः
		“काशीविश्वविद्यालय”

अयपूर्वोक्तसभामें तेरेमतके बलवानन्दसरस्वती द्वारा
स्थापित जि० आरा साकि० परशुरामपूर सं० वि० के प्रधाना-
ध्यापकके दिया हुआ अभिनन्दनको पढ़कर द्वेषको छोड़ो क्यों
तुम भगड़ा मचाते हो ।

॥ श्रीगुरुः शरणम् ॥

श्री १००८ मद्धेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्यवेदान्त प्रवर्तकाचार्य
श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य सत्संप्रदायाचार्य जगद्गुरुभग-
वदनन्तपादीय श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्य त्रिदण्ड स्वामिपादानां
शुभभिनन्दनम् ।

भाले यस्योद्धूर्वं पुण्ड्रं विलसति सुशिखा
ग्रन्थियुक्ता च शीर्षे शुभ्रं यज्ञोपवीतं यतिवर
विहितं भाति यस्योत्तमाङ्गे । दक्षे पाणौ त्रिदण्डं
निखिलभयहरं वामके दारुपात्रम् विष्वक्सेनाभि-
धानो यतिवरतिलको भ्राजते गाङ्गतीर्थे ॥ १ ॥

यस्याङ्घ्रि पङ्कजपरागविभूतिलेशात्प्रेतोऽपि
स्वर्याति विभिद्यवेणुम् । साक्षात्कृतं सकलग्राम
निवासिभिश्च गङ्गाम्बुपूते ववुराख्यग्रामे ॥ २ ॥

पद्मासनासीन मुदारचेष्टं तपस्विनं वैदिक
कर्मनिष्ठम् । भक्तैः समाराधितपादपद्मं त्रिद-
ण्डिनं तं शरणं प्रपद्ये ॥ ३ ॥

यस्य श्रीश्चरणारविन्दयुगले सिद्धिश्च हस्त
द्वये वाणी भाति मुखाम्बुजे च सततं कृष्णश्च

हृन्मण्डले । योगाभ्यासरतश्च योगिप्रवरः पद्मा-
सने संस्थितः सोऽयं नो विदधीत वाञ्छितफलं
श्रीविष्णुनामाभिधः ॥ ४ ॥

नो भालीन्यं कदाचिद्भजति हि दिवसे
अस्यते केनचिद्वा नो मेघैश्छाद्यते वा नयनसुख-
हरैर्दूष्यते वा कलङ्कैः । नो कुहूयां क्षीयते वा
क्वचिदपि समये पीड्यते पीडया वा धन्योदेव
त्रिदण्डिन् प्रभवति भुविते निर्मलः कीर्तिचन्द्रः ॥ ५ ॥

पूर्वं यः कृतवान् यतीन्द्रद्युमणिं संगृह्य ना-
नास्मृतीः तत्पश्चान्मूर्तिं पूजां विविधवचनै-
र्वेदवाक्यैश्च जुष्टाम् । ग्रन्थान्वैष्णवसम्प्रदाय-
प्रथितान् व्याख्यातवान् पुंगिरा वार्त्तामालाख्य
ग्रन्थे विरचति तिलकं चूडामणिं साम्प्रतम् ॥ ६ ॥

अतः प्रदत्तैर्भवता भवद्भ्यः वचो विशेषैश्च
विधाय पूजाम् । अलभ्य भक्तिं भवदेकनिष्ठा
मभ्यर्थयामो नितरां भवन्तम् ॥ ७ ॥

विजयदशम्याम् } ले० व्या० सां० आचार्य० परशुरामपुर
वि० सं० १६६३ } सं० वि० प्रधानाध्यापक पं० तपेश्वर
पाण्डेयः (आरा)

तथा सिनहाके गत महानारायणयज्ञमें तुम्हारे मतके जो झूसीमें संन्यासी संस्कृत विद्यालय है उसका प्रधानाध्यापक पं० रामकृष्णशास्त्रीजी आरासंस्कृतका ले० आ० जिलास्कूल० आ० टौनस्कू० आ० मझौवाँ सं० वि० आ० धन्वन्तरि सं० वि० आ० व्यापारि सं० वि० आ० त्रिपाठि सं० वि० सिद्धाश्रम (वक्सर) सं० वि० वभनगाँवा सं० वि० छिनेगाँव सं० वि० बड़हरा सं० वि० बन्धु छपरा सं० वि० एकौना सं० वि० बबुरा सं० वि० सेमरिया सं० वि० कोयिलवर सं० वि० छपरा काले० गोदना सं० वि० वांकिपुर सं० वि० पटना सं० वि० धोना सं० वि० फतुहा सं० वि० मोजफ्फरपुर काले० गया सं० वि० खर खुरा संस्कृत विद्यालयके पण्डितोंके और कलक्टर जज मोनसफ सदराला ईन्सपेक्टर आदिक गवर्मेण्टके कर्मचारियोंके सामने मेरे लिये जो सादरपत्र समर्पण किये हैं उसको तो देखकर तुम को कभी भी हूँ टूँ करनेका मोका नहीं मिलेगा नेत्र खोलकर देख लो ।

॥ ॐ मेशोमेशौ जयतः ॥

श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य—वेदान्तप्रवर्तका चार्य—श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य—सत्संप्रदायाचार्य—पदवाक्य—प्रमाणज्ञ—श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ—जगद्गुरुभगवदनन्तपादीय—सनातन धर्मप्रवर्द्धन बद्धकक्ष—निखिल सिद्धि जन्यफलामोदित त्रिभुवन—करामलकी कृतब्रह्मतत्त्वभुवन भव भय भञ्जनभृतदेह—बुधजनसेवित श्री १००८ श्रीमद्विष्ण्वक्सेनाचार्य त्रिदण्डि स्वामि चरण सरोरुहेषु सप्रणति—

यत्पादपद्मनखनिर्मलचन्द्रिकाभि रुद्धे हितः
सपदि शब्दसुधासुवराशिः । उच्छृङ्खलं मनसि
खेलति धीमतां यः पायात्सनो गणपतिः सुर-
वन्द्यपादः ॥ १ ॥

विलेशयेशे शयितो जलाशये शयेषु शङ्खा-
दियुतो रमाश्रयः । प्रमूलमेषाञ्जगताश्रयो विभु
नमाम तत्पाद कुशेशय द्वयम् ॥ २ ॥

वदान्यः सम्मान्यः करुणहृदयो मार्दवयुतः
स्थिरः शान्तो दान्तः शुचिरिहृदयावानृजुतमः ।
कृती शीली क्षान्तो भगवदविनाभाववसुमां
स्तपस्वी सन्तोषी जगति भवदन्यो न भविता ॥ ३ ॥

क च प्रेक्षा स्वामिस्तव सकलकल्याण
गुणभाक् क चास्माकं बुद्धिः कृशपरिणतिः क्लेश-
वशागा । इतीत्थं भी प्राप्तं तव चरणयोर्भक्ति-
रिह माममन्दी कृत्याधात् तनुवचन पुष्पोप-
हरणम् ॥ ४ ॥

कर्तुं लोकाञ् शोकहीनान् शेषान् काये
क्लेशान् दुर्व्वहानुद्वहन्तम् । दीनोद्धारे सर्वदा
यत्नवन्तं विष्वक्सेनं श्रद्धयैवाश्रयन्त ॥ ५ ॥

कीर्तिव्रातै स्त्रिभुवनतलं श्वैत्ययोगं नयन्तं
सत्रैर्देवानमृत वहनैः सर्वतस्तर्पयन्तम् । शिष्टैः
रिष्टैः शुभगुणगणैः प्राणिनः प्रीणयन्तं धन्यं
लोके सुकृतपरमं स्वामिवर्यं नताःस्म ॥ ६ ॥

जाह्नव्या परिपालितेऽत्र सिनहाग्रामे पवित्रे
ऽधुना संश्राव्यां च सुधा मिवातिमधुरां धर्म्यां
कथां कुर्वता । भक्ते हृद्यतमः प्रवाह्य सततं स्रोत-
स्वतीं सज्जनाः चातुर्मास्य निषेविणैव भवता-
धन्याः सनाथी कृताः ॥ ७ ॥

त्रिदण्डस्वामि पादानां सुपुण्यः कुसुमाञ्जलिः ।
निहितो रामकृष्णेन प्रीतये तत्पदाम्बुजे ॥ ८ ॥

आश्विनपूर्णिमायाम् } भूँसि संन्यासि विद्यालयाध्यापकस्य
वि० सं० १९६४ } वेदान्ताचार्य रामकृष्णशास्त्रिणः

अथ पटना बक्सि महल्ला बाबू० भगवन्नारायणसिंह मजिस्ट्रेट की कोठी में वि० सं० १९६४ कार्तिक शुक्ल द्वितिया के विराट् सनातनधर्म सभामें सब जनताके समक्ष एक कविरत्न से दिया हुआ पत्र को देखकर दुराग्रह को छोड़ दो ।

॥ श्री हरये नमः ॥

श्री १००८ श्रीमदखिलभूमण्डलालङ्कार विद्वद्भर सेवितानवरताद्यविद्याविनोद रसिकानां निरन्तरालङ्कृति शान्त दान्त भूम्नां सकल भुवन चक्रप्रतिष्ठापक श्रीसम्प्रदायप्रतिष्ठा विख्यात यशो लङ्कृतानां पाषण्ड मतखण्डन वेदोभयवेदान्तमार्गप्रतिष्ठापकाचार्याणां श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणयमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार धारणा ध्यान समाध्यष्टाङ्गयोगानुष्ठान निष्ण तानां पाषण्डमार्गमत्तकुञ्जरमर्दन मृगेन्द्रानाद्यविच्छिन्न गुरु परम्पराप्राप्तषड्दर्शन स्थापनाचार्य जगद्गुरु भगवदनन्तपादीय श्रीमद्विध्वक्सेनाचार्य त्रिदण्ड स्वामिनां पदाम्भोरुहेषु सादरं प्रपत्ति समर्पणम् ।

कृष्णोऽसकृत्प्रियतमां समपालयद्ग्यां तेनैव पातु मधुना वसुधां नियुक्तः । सेनापतिर्यमवतां पतिरेव सोऽयं सेनेशसूरिचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥१॥

सम्भूषितः स्वजनुषा तत एव देशो वंशोऽग्रगोपि रघुनन्दन मानसेष्टः । वाल्येऽपि यस्य

मनसो विषयो रमेशः सेनेशसूरिचरणौ शरणं
प्रपद्ये ॥ २ ॥

छात्रोऽपि यो भगवतः पठनालयस्य सिद्धा-
श्रमस्थ गुरु कौशिक पाठकस्य । राजेन्द्रसूरि
परहंससु संस्कृतस्य सेनेशसूरिचरणौ शरणं
प्रपद्ये ॥ ३ ॥

शिष्योऽसकृत्कृतमहाप्रतिवादिदन्ति कुम्भ-
स्थलालिसुविदारण वंशरातुः । प्रेयाननन्त भग-
वन्मृगराज मौलेः सेनेशसूरिचरणौ शरणं
प्रपद्ये ॥ ४ ॥

न्यस्ताखिलात्मचरितामृतपादपद्मो निर्योग
पालनरति निरहं ममो यः । श्रीकृष्णचन्द्रच-
रणाब्जमधुव्रतश्रीः सेनेशसूरिचरणौ शरणं
प्रपद्ये ॥ ५ ॥

पूर्वे बभूवुरिहये भगवत्प्रपन्नाः श्रीभाष्यकार
सुमुखाः सृतिसिन्धुनावः । तेषां सुचारुचरिता-
मृतपानमत्तः सेनेशसूरि चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ ६ ॥

संमोहिता खिलजगद्विषयाभिलाषा पश्य-
जनै र्यदुटजं सुतरां निरस्ता । धामोत्तमो विरति
भक्ति सुबोधसाम्रां सेनेश सूरिचरणौ शरणं
प्रपद्ये ॥ ७ ॥

प्रत्यब्दमात्मनियमाच्चतुरोऽपि मासान्वृष्टि-
प्रदानधिवसन् भगवत्पदीं यः । नारायण प्रियकरं
क्रतुमातनोति सेनेशसूरि चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ ८ ॥

दृष्ट्वैवयं निखिललोकसखं शरण्यं पापानि
दूरमपयान्ति समेति पुण्यम् । कृष्णाङ्घ्रिपङ्कज-
पलाशविलासरम्यं सेनेशसूरि चरणौ शरणं
प्रपद्ये ॥ ९ ॥

पित्वैव यस्य चरितामृत सिन्धुविन्दून् वाल-
स्य कोटि भववारिधयोल्पविन्दुः । श्रीमच्छठारि-
गुरुसूक्त सुधाकरेन्दुः सेनेशसूरि चरणौ शरणं
प्रपद्ये ॥ १० ॥

यस्योर्ध्वपुण्ड्रतिलकं विलसल्लाटे शीर्षे सुव-
न्धनशिखा सितयज्ञसूत्रम् । हस्ते त्रिदण्डमपरे

सुकमण्डलुं च सेनेशसूरि चरणौ शरणं प्रपद्ये ११

यो दैवयोगहतमङ्गलभूमिभाले तद्वैरिना-
स्तिकगिरन्निज दण्डवज्रैः । संपात्य यज्ञतिलकं
विमलं विधत्ते सेनेशसूरि चरणौ शरणं प्रपद्ये १२

श्रीमत्रिविक्रमपदाब्जपराग जन्म गङ्गाजलं
नहिविमुञ्चति यो न सद्यः । संदर्शयन् भगवतः
स्वसदस्यभावं सेनेशसूरि चरणौ शरणं प्रपद्ये १३

श्रीरङ्गदेशिकपदाब्जमधुव्रतश्रीः राजेन्द्रसूरि-
शरणो वलदेव बन्धुः । तत्सर्वं बन्धुपदलब्ध
समस्तभक्तिः सारस्य भाग्यमिदमस्तु सतां
मुदेऽलम् ॥ १४ ॥

कार्तिक शुक्ल द्वितीयायाम् } ले० कविरत्न पं० भक्तिसारशास्त्री
वि० सं० १६६४ } तरेत स्थान (पटना)

और कलकत्ता माहेश्वरी भवनमें वि० सं० १६६५ चैत्रशुक्ल
तृतीया रविवार के महामहोपाध्याय सकलनारायण शर्माजीके
तथा कलकत्ता गवर्मेन्ट सं० कालेज विशुद्धानन्द वि० शिवकु-
मार भवन सांगवेद वि० रामानुजवेदान्त वि० सनातनधर्म वि०
वाङ्मण वि० आदिकके पण्डितोंके और अनेक सेंट साहुकारोंके
समक्ष समर्पण किया हुआ त्रिदण्ड पञ्चक को देखो ।

श्रीः

श्री १००८ श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्य वेदान्तप्रवर्तका-
चार्य श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य सत्सम्प्रदाचार्य जगद्गुरु
भगवदनन्तपादीय श्री मद्विष्वक्सेनाचार्य त्रिदण्ड स्वामिनां
पदपङ्कजेष्विदं त्रिदण्डपञ्चकं सादरं समर्पणम् ।

नृलोकवासिनां त्रितापभञ्जनाय संधरन्तम-
द्भुतं हि दुष्कृतां भयप्रदं त्रिदण्डकम् । सनात-
नैकमण्डनं समस्तपापखण्डनं स्वभक्तचित्तमोहनं
भजे त्रिदण्डिनं यतिम् ॥ १ ॥

स्वधर्म संपरायणं विधर्मिगर्व भञ्जनं द्विजा-
लिमानवर्द्धनं सुरद्विषन्निकन्दनम् । सनातनप्रचा-
रकं कुमार्गनाशकारकं भुवोभरावतारकं भजे
त्रिदण्डिनं यतिम् ॥ २ ॥

कृपाकरं गुणाकरं सुखाकरं प्रभाकरं स्वदे-
शजागरूकताकरं सदैव शङ्करम् । यतीन्द्रवर्ग-
सेवितं सुभूसुरादि पूजितं सुवेदवादकूजितं भजे
त्रिदण्डिनं यतिम् ॥ ३ ॥

भवाब्धिपारकारकं नृपातकापहारकं विध-
 मिसिन्धुप्राप्तधर्मपोतकर्णधारकम् । विवेकभक्ति
 दायकं विधर्मि नाशसायकं सनातनैक नायकं
 भजे त्रिदण्डिनं यतिम् ॥ ४ ॥

विधर्मिवर्गगञ्जनं स्वभक्तमोह भञ्जनं दरिद्र-
 ता प्रभञ्जनं सुधीमनोऽनुरञ्जम् । समस्त योग-
 साधकं निकासकामदायकं हृदम्बुजैकमोहनं भजे
 त्रिदण्डिनं यतिम् ॥ ५ ॥

त्रिदण्डिपञ्चकं त्विदं त्रिपाठिना विनिर्मितं
 त्रितापमूलकर्त्तनं त्रिवर्गपारकारणम् । त्रिदेव-
 भक्तिवर्द्धकं त्रिजन्मकल्मषापहं त्रिकाल चिन्तने
 कृते त्रिदण्डि भक्ति दायकम् ॥ ६ ॥

चैत्रशुक्ल तृतीयायाम्
 वि० सं० १६६५

ले० सां० का० व्या० तीर्थ
 पं० अवधविहारी त्रिपाठी
 “कलकत्ता”

और भी अनेक समाचारपत्रों में वैसाही निकला है परन्तु
 न मालूम उस टाईटल से तुम्हारा क्या नाश हो गया कि
 चिड़ते हो ।

विद्वज्जनवि०—पृ० ३ पं० १३ किसी ब्राह्मणके घरका शुद्ध न देखा और आचरण तो दूर रहा पर जो नीचों के उबले चावलोंका भोजन करना यहीं छुड़ा देते तो घर गुरु अवश्य मान लिया जाता ।

चपेटि०—तुम्हारा यह बलिया और शाहाबाद जिलाके ब्राह्मणों का निन्दात्मक लेख ही मेरी लेखनी को उठवाया “अव जनिकरसि विप्र अपमाना जानसि ब्रह्म अनन्त समाना” “इन्द्रकुलिश मम शूल विशाला कालदण्ड हरिचक्र कराला” “जो इनकर मारा नहीं मरई, विप्र रोष पावक सो जरई” तथा

ब्राह्मणानां शरीरेषु तिष्ठन्ति सर्व देवताः ।

पादेषु सर्व तिर्थानि पुण्यानि पदधूलिषु ॥ ब्रह्मवै०

अहं प्राणोहि विप्राणां मम प्राणास्तु वै द्विजाः । तानेव द्वेष्टियो मूढ़ः मम नूनं तु हिंसकः ॥ दैवाधीनं जगत्सर्वं मंत्राधीनं च दैवतम् । तन्मंत्रं ब्राह्मणाधीनं तस्माद्ब्राह्मण देवता ॥ अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनुः ॥ किं पुन ब्राह्मणाः पुण्याः ॥

श्रीमद्भग० आध्या० ६ श्लो० ३३ ॥

इन वाक्यों को तुमने नहीं अनुसन्धान किया कि गर्ग गौतम शाण्डिल्य वशिष्ठ पराशर अगस्त कात्यायन काश्यप आदिक महर्षियों के गोत्रोत्पन्न सब ब्राह्मणों के घरको अशुद्ध लिख दिया। और तुमको लज्जा नहीं आती है कि फिर उसी अशुद्ध ब्राह्मणोंके घरमें खाते हो। तथा सब ब्राह्मणोंके निन्दात्मक “विद्वज्जन विचारपत्र” को छपानेवाला नृसिंहाश्रमको तो गलामें घड़ो बान्ध कर गंगा डूब जाना चाहिये क्योंकि आरा जिला में जन्म लेने से उनका भी घर अशुद्ध ही होगा। और दुराचारी नृसिंहाश्रमको जो संन्यास दिया वह अनधिकार चेष्टा किया क्योंकि वह तो अपनेही प्रचार कर दिया कि आरा जिलामें शुद्ध ब्राह्मण का भी घर नहीं है। तथा वेहुदा-नृसिंहाश्रम जि० बलिया सा० हरिहरपुरमें मठ बनाकर कईक वर्षसे तू रहता है और उत्तमापुर तथा जवर्हि आदिक ग्रामोंमें भोजन करता है तौ भी उन ब्राह्मणोंका निन्दा लिखाकर छपवा दिया वे ब्राह्मण तेरा कुछ ले लिये थे। धन्य निर्द्वन्द्वाश्रम तुम हो जिस बलिया जिलामें भृगुक्षेत्र दरदरक्षेत्र पराशराश्रम कामाश्रम आदिक स्थलपावन करनेवाले हैं। वहां की पतित पावनी गङ्गा तट निवासी ब्राह्मणोंके घर तुमको शुद्ध नहीं दिखाई पड़ा इसमें यही कारण है कि तुम शुद्ध नहीं हो। देह महर्षियोंका अत्यन्त शुद्ध है जड़ा वाल्मीकि रामायणको देखो क्या लिखा है ॥ दद्वशाते ततस्तत्र सरय्वाः संगमे शुभे ॥ वा० रा० बालका० १ सर्ग २३ श्लो० ५ ॥

ददृशाते ततस्तत्र सरय्याः संगमे शुभे ॥

वा० रा० वालकां० १ सर्ग० २३ श्लो० ५ ॥

तत्राश्रमपदं पुण्यमृषीणां भावितात्मनाम् ।

बहुवर्ष सहस्राणि तप्यतां परमं तपः ॥ ६ ॥

तं दृष्ट्वा परमप्रीतौ राघवौ पुण्यमाश्रमम् ।

ऊचतुस्तं महात्मानं विश्वामित्रमिदं वचः ॥ ७ ॥

कस्यायमाश्रमः पुण्यः को न्वस्मिन्वसते पुमान् ।

भगवञ्छोतुमिच्छावः परं कोतूहलं हिनौ ॥ ८ ॥

तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुंगवः ।

अब्रवीच्छ्रूयतां राम यस्यायं पूर्व आश्रमः ॥ ९ ॥

कन्दर्पो मूर्तिमानासीत्कामइत्युच्यते दुधैः ।

तपस्यन्त मिह स्थाणुं नियमेन समाहितेम् ॥ १० ॥

कृतोद्वाहं तु देवेशं गच्छन्तं स मरुद्गणम् ।

धर्षयामास दुर्मेधा हुंकृतश्च महात्मना ॥ ११ ॥

अवध्यातश्च रुद्रेण चक्षुषा रघुनन्दन ।

व्यशीर्यन्त शरीरात्स्वात्सर्वगात्राणि दुर्मतेः ॥ १२ ॥

तत्रगात्रं हतं तस्य निर्दग्धस्य महात्मनः ।

अशरीरः कृतः कामः क्रोधाद्देवेश्वरेणह ॥१३॥
 अनङ्ग इति विख्यातस्तदा प्रभृति राघव ।
 सचाङ्ग विषयः श्रीमान्यत्राङ्गं स मुमोचह ॥१४॥
 तस्याय माश्रमः पुण्यस्तस्येमे मुनयः पुरा ।
 शिष्या धर्म परा वीरतेषां पापं न विद्यते ॥ १५ ॥
 इहाद्य रजनीं राम वसेम शुभ दर्शन ।
 पुण्ययोः सरितोर्मध्ये श्वस्तरिष्या महेवयम् ॥१६॥
 अभिगच्छामहे सर्वे शुचयः पुण्यमाश्रमम् ।
 इह वासः परोऽस्माकं सुखं वत्स्यामहे निशाम् ॥१७॥
 स्नाताश्च कृतजप्याश्च हुतहव्या नरोत्तम ।
 तेषां संवदतां तत्र तपोदीर्घेण चक्षुषा ॥ १८ ॥
 विज्ञाय परम प्रीता मुनयो हर्षमागमन् ।
 अर्घ्यं पाद्यं तथातिथ्यं निवेद्य कुशिकात्मजे ॥१९॥
 रामलक्ष्मणयोः पश्चादकुर्गन्नतिथि क्रियाम् ।
 सत्कारं समनुप्राप्य कथा भिरभिरञ्जयन् ॥२०॥
 यथार्हमजपन्संध्या मृषयस्ते समाहिताः ।
 तत्र वासिभिरानीता मुनिभिः सुव्रतैः सह ॥२१॥

न्यवसत्समुखं तत्र कामाश्रमपदे तथा ॥ २२ ॥

इन पूर्वोक्त श्लोकोंसे ज्ञात होता है कि बलिया जिला भर पवित्र है फिर "किसी ब्राह्मण का घर शुद्ध न देखा" यह कुक्कुर के समान भूँका करो इससे वहाँ के ब्राह्मणोंका कुछ भी तेरे से नहीं होने वाला है बल्कि कामदेवकी समान तेरी ही दुर्देशा होवेगी। अब शाहाबाद जिलाके गंगातटवासी ब्राह्मणों के घरको जो तुमने अशुद्ध बतलाया सो भी भंगका तरंगमें। वह विश्वामित्र प्रभृति से सेवित अत्यन्त पवित्र देश है। इस विषय में हठ छोड़कर वाल्मीकि रामायण को देखो क्या लिखा है ॥

तीरं दक्षिणमासाद्य जग्मतुर्लघुविक्रमौ ।

सवनं घोरसंकाशं दृष्ट्वानखरात्मजः ॥

वा० रा० बालकां० १ सर्ग २४ श्लोक १२ ॥

अविप्रहतमैश्वराकः पप्रच्छ मुनिपुंगवम् ।

अहोवनमिदुर्गं झिल्लिकागण संयुतम् ॥ १३ ॥

भैरवैः श्वापदैः कीर्णं शकुन्तैर्दारुणारवैः ।

नानाप्रकारैः शकुनैर्वाश्यद्भिर्भैरवस्वनैः ॥ १४ ॥

सिंहव्याघ्रवराहैश्च वारणैश्चापि शोभितम् ।

धवाश्वकर्णककुभैर्बिल्वतिन्दुकपाटलैः ॥ १५ ॥

संकीर्णं बदरीभिश्च किं न्विदं दारुणं वनम् ।

तमुवाच महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः ॥१॥
 श्रूयतां वत्स काकुत्स्थ यस्यैतदारुणं वनम् ।
 एतौ जनपदौ स्फीतौ पूर्वमास्तां नरोत्तम ॥१७॥
 मलदाश्च करूषाश्च देवनिर्माणनिर्मितौ ।
 पुरावृत्रबधे राम मलेन समभिप्लुतम् ॥ १८ ॥
 क्षुधाचैव सहस्राक्षं ब्रह्महत्या समाविशत् ।
 तमिन्द्रं मलिनं देवा ऋषयश्च तपोधनाः ॥१९॥
 कलशैः स्नामयामासुर्मलं चास्य प्रमोचयन् ।
 इह भूम्यां मलं दत्वा देवाः कारु षमेव च ॥२०॥
 शरीरजं महेन्द्रस्य ततो हर्षं प्रपेदिरे ।
 निर्मलो निष्करूषश्च शुद्धइन्द्रो यथाभवत् ॥२१॥
 ततो देशस्य सुप्रीतोवरं प्रादादनुत्तमम् ।
 इमौ जनपदौ स्फीतौ ख्यातिं लोके गमिष्यतः ॥२२॥
 मलदाश्च करूषाश्च ममाङ्गमलधारिणौ ।
 साधु साध्वितितं देवाः पाकशासनमब्रुवन् ॥२३॥
 देशस्य पूजां तां दृष्ट्वा कृतां शक्रेण धीमता ।
 एतौ जनपदौ स्फीतौ दीर्घं कालमरिन्दम ॥२४॥

मलदाश्च करूषाश्च मुदिता धन धान्यतः ।
 कस्यचित्त्वथकालस्य यक्षिणीकामरूपिणी ॥२५॥
 वलं नागसहस्रस्य धारयन्ती तदाह्यभूत् ।
 ताटका नाम भद्रंते भार्या सुन्दस्य धीमतः ॥२६॥
 मारीचो राक्षसः पुत्रो यस्याः शक्रपराक्रमः ।
 वृत्तबाहुर्महाशीर्षो विपुलास्यतनुर्महान् ॥ २७ ॥
 राक्षसो भैरवा कारो नित्यं त्रासयते प्रजाः ।
 इमौ जनपदौ नित्यं विनाशयति राघव ॥२८॥
 मलदाश्चकरूषाश्च ताटका दुष्टचारिणी ।
 सेयं पन्थानमावृत्यवसत्यत्यर्धयोजने ॥ २९ ॥
 अतएव च गन्तव्यं ताटकायावनं यतः ।
 स्वबाहुवलमाश्रित्यजहीमां दुष्टचारिणीम् ॥ ३०॥
 मन्नियोगादिमं देशं कुरु निष्कण्टकं पुनः ।
 नहिकश्चिदिमं दैशं शक्तो ह्यागन्तुमीदृशम् ॥३१॥

इससे सिद्ध हो गया कि आरा जिलामें ही इन्द्र पवित्र हुआ है । और उसी जिलाको मलद और करूप कहते हैं । और भी लिखा है देखो ॥

किमेतन्मेव संकाशं पर्वतस्या विदूरतः ।
वृक्षखण्डमितो भाति परं कौतूहलं हिमे ॥

वा० रा० वा० का० १ सर्ग २८ श्लो० १७ ॥

दर्शनीयं भृगाकीर्णं मनोहरमतीव च ।
नाना प्रकारैः शकुनैर्बल्लुभाषै रलंकृतम् ॥ १८॥
निःसृताः स्ममुनिश्रेष्ठकान्ताराद्रोमहर्षणात् ।
अनया त्ववगच्छामि देशस्य सुखवत्तया ॥ १९ ॥
सर्वं मे शंसभगवन्कस्याश्रमपदं त्विदम् ।

संप्राप्ता यत्र ते पापा ब्रह्मघ्नाः दुष्टचारिणः ॥ २०॥
तव यज्ञस्य विघ्नाय दुरात्मानो महामुने ।
भगवंस्तस्यको देशः सा यत्र तव यज्ञिकी ॥ २१॥
रक्षितव्या क्रिया ब्रह्मन्मया वध्याश्च राक्षसाः ।
एतत्सर्वं मुनिश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो ॥ २२॥
अथ तस्याप्रमेयस्य वचनं परिपृच्छतः ।
विश्वामित्रो महातेजा व्याख्यातुमुपचक्रमे ॥

वा० रा० वा० वा० १ सर्ग २६ श्लो० १ ॥

इह राम महाबाहो विष्णुर्देवनमस्कृतः ।

वर्षाणि सुबहूनीह तथा युगशतानि च ॥ २ ॥
 तपश्चरणयोगार्थमुवास सुमहा तपाः ।
 एष पूर्वाश्रमो राम वामनस्य महात्मनः ॥ ३ ॥
 सिद्धाश्रम इति ख्यातः सिद्धो ह्यत्र महातपाः ॥
 एतस्मिन्नेवकाले तु राजा वैरोचनिर्वलिः ॥ ४ ॥
 निर्जित्य दैवतगणा न्सेन्द्रान्सहमरुद्गणान् ।
 कारयामास तद्राज्यं त्रिषुलोकेषु विश्रुतः ॥ ५ ॥
 यज्ञं चकार सुमहानसुरेन्द्रो महाबलः ।
 बलेस्तु यजमानस्य देवाः साग्निपुरोगमाः ।
 समागम्य स्वयं चैव विष्णु मूचुरिहाश्रमे ॥ ६ ॥
 बलिवैरोचनि विष्णो यजते यज्ञमुत्तमम् ।
 असमाप्तव्रते तस्मिन्स्वकार्यमभिपद्यताम् ॥ ७ ॥
 ये चैनमभिवर्तन्ते याचितार इतस्ततः ।
 यच्च यत्र यथावच्च सर्वं तेभ्यः प्रयच्छति ॥ ८ ॥
 सत्वं सुरहितार्थाय मायायोगमुपाश्रितः ।
 वामनत्वं गतो विष्णो कुरु कल्याण मुत्तमम् ॥ ९ ॥
 एतस्मिन्नन्तरे राम कश्यपोऽग्निसमप्रभः ।

आदित्या सहितो राम दीप्यमान इवौ जसा ॥१०॥
 देवी सहायो भगवान्दिव्यं वर्ष सहस्रकम् ।
 व्रतं समाप्य वरदं तुष्टाव मधुसूदनम् ॥ ११ ॥
 तपोमयं तपोरार्शिं तपोमूर्तिं तपात्मकम् ।
 तपसा त्वां सुतप्तेन पश्यामि पुरुषोपमम् ॥ १२ ॥
 शरीरे तव पश्यामि जगत्सर्वं मिदं प्रभो ।
 त्वमनादिरनिर्देश्य स्वामहं शरणं गतः ॥ १३ ॥
 तमुवाच हरिः प्रीतः कश्यपं धृतकल्मषम् ।
 वरं वरय भद्रं ते वराहोऽसि मतो मम ॥ १४ ॥
 तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य मारीचः कश्यपोऽब्रवीत् ।
 अदित्या देवतानां च मम चैवानुयाचितम् ॥१५॥
 वरं वरद सुप्रीतो दातुमर्हसिसुव्रत ।
 पुत्रत्वं गच्छभगवन्नदित्याममचानघ ॥ १६ ॥
 भ्राताभव यवीयांस्त्वं शक्रस्य असुरसूदन ।
 शोकार्तानां तु देवानां साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥१७॥
 अयं सिद्धाश्रमोनाम प्रसादान्ते भविष्यति ।
 सिद्धैकर्मणि देवेश उत्तिष्ठ भगवन्नितः ॥ १८ ॥

अथ विष्णुर्महातेजा अदित्यां समजायत ।
 वामनं रूपमास्थाय वैरोचनि मुपागमत् ॥ १९ ॥
 त्रीन्पदानथ भिक्षित्वा प्रतिगृह्य च मेदिनीम् ।
 आक्रम्य लोकांल्लोकार्थीं सर्वलोकहितेरतः ॥ २० ॥
 महेन्द्राय पुनः प्रादान्नियम्य बलिमोजसा ।
 त्रैलोक्यं च महातेजाश्चक्रे शक्रवशं पुनः ॥ २१ ॥
 तेनैव पूर्वमाक्रमन्त आश्रमः श्रमनाशनः ।
 मयापि भक्त्या तस्यैववामनस्योपभुज्यते ॥ २२ ॥
 एनमाश्रममायान्ति राक्षसा विघ्नकारिणः ।
 अत्र ते पुरुषव्याघ्र हन्तव्या दुष्टचारिणः ॥ २३ ॥
 अद्यगच्छामहे राम सिद्धाश्रम मनुत्तमम् ।
 तदाश्रमपदं तात तवाप्येतद्यथा मम ॥ २४ ॥
 इत्युक्त्वा परमप्रीतो गृह्य रामं सलक्ष्मणम् ।
 प्रविशन्नाश्रमपदं व्यरोचत महासुनिः ।
 शशीवगतनीहारः पुनर्वसुसमन्वितः ॥ २५ ॥
 तं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे सिद्धाश्रमनिवासिनः ।

उत्पत्योत्पत्य सहसा विश्वामित्रमपूजयन् ॥२६॥

इन श्लोकों से ज्ञात होता है कि आरा जिलामें सिद्धाश्रम (बक्सर) अत्यन्त पवित्र स्थान है। केवल बक्सर अत्यन्त पवित्र स्थान मात्र नहीं है बल्कि विष्णु भगवान् के एक सौ आठ महादिव्य देशोंमें भी परिगणित है जैसे कि ॥ व्याघ्रपुर्यां महाविष्णुम् ॥ विष्णोरष्टोत्तरशतस्था० श्लो० २१ ॥ और अन्यत्र भी लिखा है कि ॥ यत्र गङ्गा च बलिभोयत्रचैत्ररथंवनं यत्र सोमेश्वरो देवो मुक्तिस्तत्र पदे पदे ॥ इस श्लोकके अनुसार पद पदमें मुक्ति देनेवाला चैत्ररथ वन अर्थात् चरित्र वन है। वह वन भी तुमको आरा जिलामें शुद्ध नहीं दिखाया कि लिख दिया कि आरा जिलामें “किसी ब्राह्मण का घर शुद्ध नहीं देखा” यह कुक्कुरके समान तुम भूँ का करो इससे वहाँके ब्राह्मणोंका कुछ क्षति नहीं है। बल्की सुवाहुके समान तेरी ही दुर्दशा होगी। मेरा तो सब ब्राह्मणोंके विषयमें यही कहना है कि पुनन्तु मां ब्राह्मण पादरेणवः ॥ अब अपना तीसरा पृष्ठमें जो तुमने लिखा कि “नीचोंके उबले चावलोंका भोजन करना छुड़ा देते तो घर गुरु अवश्य मान लिया जाता” सो कितना पक्षपात लेकर तेरा लेख है। बलिया शाहाबाद जिलामें तो दो आना उबले चावलोंको भोजन करनेवाले हैं। जहां पर कि तेरा गोबर्धन पीठ है और तारकेश्वर तथा बुद्धगया स्थान है वहांपर तो विरक्त छोड़कर प्रायः सब जनता उबले चावलों को भोजन करती है। और वंग तथा उत्कल की जनता तो

मद्य मांस मीन ताड़ी धूम्रपानादिक को अच्छी प्रकारसे करती है यह मैं पैदल यात्रामें अपने नेत्रोंसे देखा हूँ उस दुर्व्यसय को क्या तुमने छुटकाया । जैसे मेरे लिये तुमने लिखा वैसे ही गोवर्धन पीठाधीश जी को भी लिखना चाहिये कि जगद्गुरु अपने लिखना छोड़ दो यदि कटक जिलाके उबला चावल तथा मीन और ताड़ी खाना यह जनतासे छोड़वा देंगे तो आपको घर गुरु अवश्य मैं मान लूंगा । उनको छोड़ो जिस काशीमें तेरे मतका सैकड़ों स्थान हैं वहाँ कि गोकसीको और रण्डी-वाजीको तथा मादक वस्तु सेवनको अभी तक तुम लोगों ने हटाया नहीं । तो फिर मेरे ऊपर क्यों कटाक्ष करते हो मेरा उपदेश देना कर्तव्य है उस उपदेशको ग्रहण करना तो जनता के अधीन है । भारतका इतना अधःपतन हो गया है कि मादक वस्तुके बहिष्कारमें बड़े बड़े नेता जेल श्रेले' तौ भी औरों को क्या कहूँ साधु नामधारियोंने भी गंजा पीना नहीं छोड़ा । फिर केवल एक मेरा उपदेश से समस्त आरा और बलिया जिला एकाएकी कैसे उबला चावल भोजन करना छोड़ दे । खैर तुम्हारा आचार भी तो विलक्षणहीं है कि एकादशी तिथिके अरवा चावल फिंगु से छे'वका हुआ भांटा तथा कोबीके तरकारी और चानाके दाल कांस की थालीमें मूलिके आंचार सहित कितने दिनों की हण्डीमें रजस्वला स्त्रीसे रक्खा हुआ गपागप खाते हो इसमें दोष नहीं है । क्या किसी घरमें तुमने भोजनके समय जांच किया है कि मिट्टी कि कितने दिनोंकी हण्डीमें बना है कि

धातुका पात्रमें रजस्वला स्त्री तो नहीं बनायी है। इस बातको कभी नहीं जिज्ञासा किया यह सब लोगों से मैं जानता हूँ। धन्य तुम हो उबला चावलमें दोष लगाया करो। और नीचों के उबला चिऊराको नेत्र मूँदकर दधिके साथ खाया करो। विद्वज्जन वि०—पृ० ३ पं० १७ केवल काशीजीको विजय कर लेते तौ भी जगद्गुरु कहना बन जाता।

चपेटि०—तिर्द्वन्द्व तुम अजब लेख' यहां पर लिखा थोड़ा भी तो विचार करो कि क्या तेरा मतके जो शृङ्गेरी पीठाधीश हैं और शारदापीठाधीश हैं सो वर्तमान कालमें केवल काशीको विजय किये हैं नहीं तो फिर अपनेको वे क्यों जगद्गुरु लिखते हैं अपने लेखानुसार पत्र लिखकर उनलोगों के पास तुम क्यों नहीं भेजा। और सुनो यदि काशीको विजय करने वाले को तुम जगद्गुरु मानते हो तो काशीको विजय आजकल अंग्रेज किये हैं। और थोड़े दिन पहले मुशलमान किये थे। तो तेरा कथनानुसार जगद्गुरु अंग्रेज तथा मुशल० तेरा हो गये। धन्य पक्षपाती तुम हो कि शिखा सूत्र नहीं होनेसे ईशाई और मुशलमानको तो अपनेसे जगद्गुरु मान लिया। और जिसको सब जनता जगद्गुरु मानती है उससे शिखा सूत्र होनेके कारण तुम विरोध करते हो। तुमको तो अभी तक जगद्गुरु शब्दका अर्थ भी नहीं ज्ञात है नहीं तो इतना भूलकर पत्र नहीं लिखता अबसे जान लो कि जगत् कहते हैं संसारके और गुरु शब्दका अर्थ अद्वयतारकोपनिषद् में लिखा है कि

अचार्यो वेदसंपन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः ।
 योगज्ञो योगनिष्ठश्च सदा योगात्मकः शुचिः ॥
 गुरुभक्तिसमायुक्तः पुरुषज्ञो विशेषतः ।
 एवं लक्षणसंपन्नो गुरुरित्यभिधीयते ॥
 गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्गुशब्दस्तन्निरोधकः ।
 अन्धकार निरोधित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते ॥

अद्वयतार० ॥

आचार्य वेद पढ़ा हो विष्णु भक्त हो मत्सर रहित हो योग जाननेवाला हो योग निष्ठ हो और सर्वदा योगात्मक तथा पवित्र हो ॥ गुरु की भक्ति से अच्छे प्रकार युक्त हो विशेष रूपसे पुरुषको जानने वाला हो इन सब लक्षणोंसे युक्त हो उसको गुरु कहते हैं ॥ गु कहते हैं अन्धकारको और रु कहते हैं प्रकाशको अर्थात् सदुपदेश द्वारा जो अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर करे उसको गुरु कहते हैं । इस प्रकारके जगद्गुरु शब्दका अर्थ है । अब इस विषयमें हूँ टूट करनेका मोका तुमको जड़ासा भी नहीं रह गया ।

विद्वज्जनवि०—पृ० ४ पं० १ सब शत्रुओं के नाश किए बिना और भूमण्डलके राजभोग किये बिना हम राजा हैं ऐसा कहने से जैसे कोई राजा नहीं होता है तैसे ही शब्द मात्र से क्या जगद्गुरु हो सकता है ।

चपेटि०—निर्द्वन्द्व तुम पूरा निमक हराम हो क्योंकि काशी में राजाओं का क्षेत्रमें भोजन करते हो और पत्रमें राजाओं की निन्दा लिखा क्या यही मोका तुमको मिला है। इस समय राजा लोग तो किसान दलके नेताओंसे ही बेचैन हैं तुमने पूर्वोक्त लेखको क्यों लिखा। भला तुम विचार करो कि ऐसा कोई भी संसार में है जो कि सब शत्रुओंके नाश किया हो और समस्त भूमण्डलके राजभोग किया हो नहीं तब तेरे लेखानुसार संसारमें कोई राजा ही नहीं हैं। काशी नरेशके पास पत्र लिख कर भेज दो कि भूमण्डलके राजभोग करनेवाला राजा है। तुम तो काशी मण्डल भरका भी राजभोग करनेवाला नहीं हो इससे राजा नहीं हो बस कि जितना निन्दा सब लोगोंको किये हो उसका प्रायश्चित्त पुलिस तमेंवा और ठोकरके द्वारा कर देगी। अब तुमको यह भी विचार करना चाहता था कि शब्द मात्र से विच्छू और सर्प प्रभृतिके विष दूर हो जाता है। और शब्द मात्रसे धधकतो आगमें राहू पूजक दौड़ते हैं तथा शब्दमात्रसे मुखतार वकील बालिस्टर द्रव्य कमाते हैं और खूनसे बचा लेते हैं। और शब्द मात्रसे कोकिल मनको हरण करलेती है। तथा द्वन्द्व से परिपूर्ण होनेपर भी तुम शब्दमात्रसे ही निर्द्वन्द्व लिखते हो। इसी प्रकारसे शब्दमात्रसे भी जगद्गुरु हो सकता है। दुर्जन तोष न्यायसे मैं यह उत्तर दिया हूँ वस्तु तस्तु पहिले जो जगद्गुरु शब्दका अर्थ मैं लिखा हूँ वह अर्थ जिसमें हो उसको जगद्गुरु कहते हैं। आजकल बहुतसे लोग जगद्गुरु लिखते हैं।

परन्तु उन लोगों के प्रति कुछ भी न लिखकर मुझको क्या कमजोर समझते हो कि वाक्यका गुलछारा मारते हो ध्यान रखना “यहां कुम्हड़ बतिया कोउ नहीं। जो तर्जनि देखत मरि जाहीं” ।

चिद्वज्ज०—पृ० ४ पं० ८ यवन और ईसाई धर्मके ऊपर जो कटाक्षरूपसे एक शब्द भी लिख देते तो घोर पापके भागी हो जाते । जो भारतवर्षकी लाखों करोड़ों गौओंको खाकर हजम कर गये और अनेक स्त्री पुरुषों को यवन और ईसाई बना डाला । तो पूछना चाहिये क्या इनका धर्म और आपका धर्म एक ही है जो इनके ऊपर एक शब्द भी नहीं कहा ।

चपे०—निर्व्वन्द्वश्रम तुमको कलम उठानेमें लज्जा नहीं आई कि यवन और ईसाई मजहब को धर्म लिख दिया अभी धर्मका लक्षण तुमको ज्ञात नहीं है फिर धार्मिक विचार तुम क्या करोगे । देखो जैमिनिमहर्षि कहे हैं कि ॥ चोदनालक्ष-
 ५र्थो धमः ॥ मीमां० अ० १ पा० १ सू० २ ॥ इससे विरुद्ध धर्म नहीं है । खैर तुमने क्या अर्थ पञ्चकादिक ग्रन्थ को नहीं सुना था अपने पत्रका सताईसवां पृष्ठमें लिखते हो कि “अर्थपञ्चकादिमें सुना सो सहन कीन्हा” इससे साबित होता है कि तुम अर्थ-
 पंचक सुने हो तो क्या जिस समय छाछठिका पत्रमें यवन और ईसाईका खण्डन आया उस समय तुम बधिर हो गया या भंगके तरंगमें बेहोश हो गया । अबसे अथे पंचक मर्मबोधिनी युक्तके छाछठिका पत्र को और चिन्तामणि से संयुक्त श्रीवचन भूषण

के छिहत्तरिका पत्रको सुन लो या नेत्र हो तो अब देख लो मैं अच्छी प्रकारसे यवन और ईसाई मजहबका खण्डन किया हूं। तुम ने यवन और ईसाई से विरुद्ध कोई पत्र नहीं लिखा। और यवन ईसाई धर्म लिखा इससे मालुम होता है कि तेरे मतके अनुकूल ही उन सबोंका मजहब है। और तुमने जो लिखा कि “इनका धर्म और आपका धर्म एक ही है” सो तो हमारा शिखा सूत्र और तिलक देखकर एक छोटासा लड़का भी कह सकता है कि यवन और ईसाईसे विरुद्ध त्रिदण्डीजी का धर्म है। परन्तु तेरा सिद्धान्त तथा यवन और ईसाईका सिद्धान्त देखनेसे लगभग एक जान पड़ता है। जैसे यवन तथा ईसाई शिखा सूत्र नहीं रखते हैं तैसे ही तुम भी नहीं रखते हो। जैसे वे सब बधना रखते हैं और उसीसे पैखाना भी जाते हैं भोजन भी करते हैं वैसे ही तुम लोग भी टोंटी लगी हुई मिट्टी की बधना रखते हो और उसीसे पैखाना भी जाते हो भोजन कालमें जल भी पीते हो। जैसे वे सब भात रोटी को चौकासे बाहर जानेपर भी खा लेते हैं तैसे ही तुम लोग बहुत दूर भात रोटीको ले जाकर खा लेते हो। जैसे संख्या बढ़ानेके लिये वे सब शिखा कटवाकर भोले भले बच्चोंको अपना बना लेते हैं तैसे ही तुम लोग संख्या बढ़ानेके लिये शिखा कटवाकर भोलेभले बच्चोंको अपना बना लेते हो। जैसे व्यभिचारिणी स्त्रियोंको वे सब कलमा सिखाकर बसकर लेते हैं तैसे ही तुमलोग भी व्यभिचारिणी स्त्रियोंको “शिवोऽहं” सिखाकर बस कर लेते

हो। और अधिक मैं क्या लिखूँ जैसे वे सब यज्ञ दान तीर्थ व्रत संध्या आदिक कर्मोंको परित्याग कर देते हैं तैसे ही तुम भी यज्ञ दान तीर्थ व्रत संध्या आदिक कर्मोंको परित्याग कर दिये हो। इससे साबित होता है कि तुम्हारा मत और यवन तथा ईसाईका मजहब लगभग एक है।

विद्वज्ज०—पृ० ४ पं० १८ जब एक दण्डका विधान ही नहीं है तो विशेषरूपसे त्रिदण्डी ही होना चाहिये। त्रिदण्डधारी बहुत कम हैं और जो हैं वे ढोंगी हैं।

चपे०—निर्द्वन्द्व मैं तो एक दण्डका विधानका विषयमें कुछ नहीं लिखा फिर तुम अपने से लिख दिया कि एक दण्डका विधान ही नहीं है। खैर विचार करो इस घोर कलिकालमें जिसको शास्त्र विधान किया है उसको ग्रहण करनेवाले अधिक हैं। देखो—

यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात् । अहरहः
संध्यामुपासीत ॥ स्वर्गकामो यजेत ॥

जब तक जिये तब तक अग्निहोत्रकरै। रोज रोज संध्याको करै। स्वर्गकी कामना वाला यजन करै। शास्त्र अग्निहोत्रादिक को विधान किया है तौ भी अग्निहोत्र आदिक बहुत कम हैं। इसी न्यायसे शास्त्रत्रिदण्ड ग्रहणको विधान किया है तौ भी त्रिदण्डधारी बहुत कम हैं। और ॥ न सुरां पिबेत् ॥ न कलज्जं भक्षयेत् ॥ न ब्राह्मणं हन्यात् ॥ मदिराको नहीं पान

करै। कलञ्जको नहीं भक्षण करै। ब्राह्मणको नहीं मारै। शास्त्र सुरापानादिकको निषेध किया है तो भी मद्यपानादिक को करनेवाले बहुत अधिक इस समय हैं। इस तुल्य न्यायसे तुम्हारे मतको शास्त्र निषेध किया है तो भी एक दण्डी कलिके प्रभावसे इस समय अधिक हो गये हैं। यदि तुम्हारा बात मान लिया जाय कि अधिक होनेसे त्रिदण्डीसे एक दण्डी श्रेष्ठ हैं। तो तुल्य न्याय द्वारा अधिक होने से एक दण्डीसे यवन श्रेष्ठ हैं। यह जो तुमने लिखा कि त्रिदण्डी ढोंगी हैं। इसमें कोई प्रमाण क्यों नहीं दिया। वस्तुतः मुड़िया तुमलोग ढोंगी हो विचार कर देखो “जेवर्णाधमतेलि कुम्हारा श्वपच किरात कोल्ह कलवारा” “नारि मुई गृहसम्पति नाशी मूड़ मुँड़ाइ भये संन्यासी” “ते विप्रन सन पाँव पुजावहि उभय लोक निज हाथ नशावहि” त्रिदण्डी वैदिक संन्यासी हैं इस विषयमें तुम्हारेको और तुम्हारे पिछू लोगोको डङ्के के चोटसे ललकार कर शास्त्रार्थ का खुला चैलेञ्ज देता हूँ। कागजिघोड़ा दौड़ने से काम नहीं चलेगा।

विद्वज्जन०—पृ० ४ पं० २० काशी आदि उत्तमस्थानोंमें परम्परा एक दण्डी हो सुनने और देखने में आते हैं।

चपेटि०—वाहजी वाह खूब लिखा ॥

आद्यमेतत्स्वयं व्यक्तं विमानं रङ्ग संज्ञकम्।

श्रीमुष्णं वेङ्कटाद्रिं च सालग्रामं च नैमिषम् ॥

श्रीविष्णो रष्टोत्तर शतस्था० श्लो० ३५ ॥

तोताद्रिं पुष्करं चैव नर नारायणाश्रमम् ।

अष्टौ मे मूर्तयः सन्ति स्वयं व्यक्ता महीतले ॥३६॥

इन प्रमाणों से महादिव्य देश श्रीरङ्गम् ? श्रीमुष्णम् २ वेङ्कटाद्रि ३ सालग्राम क्षेत्र ४ नैमिषारण्य ५ तोताद्रि ६ पुष्कर ७ नरनारायणाश्रम ८ इन आठ उत्तम स्थानों में और वारणाद्रि १ यादवाद्रि २ गरुडाद्रि ३ महेन्द्राद्री ४ नीलाद्रि ५ रैवतकाद्रि ६ गोवर्धनाद्रि ७ तथा अयोध्या १ मथुरा २ हरिद्वार ३ काशी ४ द्वारिका ५ आदिका दिव्यस्थलों में अनाद्य विच्छिन्न गुरु परंपरा से त्रिदण्डी ही सुनने और देखने में आते हैं। तथा काशी में भी राजघाट पर और असीघाट पर त्रिदण्डियों के निवास स्थल है हि हैं। फिर क्या तुम बधिर और अन्धा होगये हो कि काशी में त्रिदण्डी तेरेको सुनने और देखने में नहीं आते हैं।

विद्वज्ज०—पृ० ५ पं० २ त्रेता में रावण त्रिदण्ड ही धारण कर सीता को हरलाया था और द्वापर में अर्जुन भी त्रिदण्ड धारण कर सुभद्रा को हर लाया था।

चपेटी०—निर्व्वन्द्व तुम धन्य हो कि याज्ञवल्क्यमहर्षि तथा दुर्वासा महर्षि शास्त्र विहित जो त्रिदण्ड ग्रहण किये थे। वे लोग ग्रन्थों में तुमको नहीं दिखाई पड़े। और त्रिदण्ड कि निन्दा करनेके लिये तुमको रावण तथा अर्जुन लौक गुये।

और पूर्वोक्त लेख तेरा त्रिदण्ड धारण का विषय में अकिंचित्कर है। भला तुम विचार करो कि कोई एक नट एक दण्डी का भेष बना कर यदि किसी राजकुमारी को हरण करले तो क्या सच्चा एक दण्ड धारण करने वाला निन्दनीय हो सकता है नहीं। तुल्य न्याय से त्रिदण्ड के अनधिकारी मद्यमांस से वन करने वाला रावण तथा राजन्य कुलका अर्जुन बिना आचार्य कि सन्धि के और चार प्राजापत्य कृच्छ्रकों तथा आठ दैवादिक श्राद्ध को और ब्रह्मरात्री जागरण को नहीं करके तथा प्रैषको बिना सुने हुये त्रिदण्डी का भेष बना कर यदि श्री सीता देवी को तथा सुभद्रा देवी को हरण कर लिये तो क्या कभी शास्त्रानुसार त्रिदण्ड धारण करने वाला निन्दनीय हो सका है नहीं। भला तुम को विचार करना चाहिये कि जिस महर्षि याज्ञवल्क्य का प्रवचन बृहदारण्यकोपनिषद् में बृहद्रूप से है वह महानुभाव ॥

मैत्रेयीति हो वाच याज्ञवल्क्यः प्रव्रजिष्यन्वा ॥

बृह० अ० ४ ब्रा० ५ श्रु० २ ॥

इस कथनानुसार जब परिव्राजक होनेकी इच्छा कि तब ॥

सर्वभूतहितः शान्त त्रिदण्डी सकमण्डलुः ।

एकारामः परिव्रज्य भिक्षार्थी ग्राम माश्रयेत् ॥

याज्ञवल्क्यस्मृ० अ० ३ श्लो ० ५८ ॥

इस अपने कथननुसार त्रिदण्डी परिव्राजकही हुए हैं।

यहां पर “सकमण्डलुः” पदका सोहचर्य से बाह्य तीन दण्ड को ही पस्म विवेकी याज्ञवल्क्य मुनि धारण किये हैं । यदि निन्दनीय त्रिदण्ड धारण होता तो पूर्व्वोक्त महर्षि क्यों त्रिदण्ड धारण करते । और अवन्तिपुर का ब्राह्मण अवधूत होता हुआ त्रिदण्ड ग्रहण किया था यह श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि-
इत्यभिप्रेत्य मनसा ह्यावन्त्यो द्विजसत्तमः ।

उन्मुच्य हृदयग्रन्थीन् शान्तो भिक्षुरभून्मुनिः ॥

श्रीमद्भा० स्कं० ११ अ० २३ श्लो० ३१ ॥

स च चार महीमेतां संयतात्मेन्द्रियानिलः ।

भिक्षार्थं नगरग्रामानसङ्गोऽलक्षितोऽविशत् ॥ ३२ ॥

तं वै प्रवयसं भिक्षुमवधूतमसज्जनाः ।

दृष्ट्वापर्यभवन्भद्र बह्वीभिः परिभूतिभिः ॥ ३३ ॥

केजित्त्रिवेणुं जगदहुरेकेपात्रं कमण्डलुम् ।

पीठं चौकेऽक्षसूत्रं चकन्थां चीराणिकेचन ॥ ३४ ॥

यहां पर “त्रिवेणुम्” यह पद है इससे ज्ञात होता है कि अवन्तिपुरी का ब्राह्मण भी त्रिदण्डी ही सन्यासी था । और विशेष मैं क्या कहूं रुद्रावतार दुर्वासा महर्षि भी तो त्रिदण्ड धारण किये थे यह महाभारत के भविष्यपूर्व में हंसडिम्भक का उपाख्यान में स्पष्ट लिखा है ॥

शिक्यं च दारवं पात्रं द्विदलान् वेणुकान् बहून् ।
इदमप्यपरं पश्य तयोः साहसचेष्टितम् ॥

महा भा० भविष्य प० अ० १११ श्लो० ६१ ॥

कौपीनं बहुधाछिन्नं तदस्माकं महद्धनम् ।

कृतं कपालमात्रेण कमण्डलु जगत्प्रभो ॥ ६२ ॥

यहां पर शिक्य के साहचर्य से और “वेणुकान्” ऐसा बहुवचनान्त पद होने से ज्ञात होता है कि पुष्कर निवासी दुर्वासामहर्षि त्रिदण्डी संन्यासी थे। विद्वज्जन वि०—पृ० ५ पं० ६ गोकुलिया गोसांई कहे जाते हैं इन लोगोंके किसी पूर्वज ने त्रिदण्ड धारण किया था फिर कुछ काल के बाद दण्ड को छोड़ कर गृहस्थ होगये। कहां तक कहे माथा बहुत है पर लेख थोड़ा लिखना है। इनसे पूछा जावे क्या एक दण्ड धारीने भी ऐसा पूर्व से लेकर आजतक किसीने किया है।

चपेटि०—निर्व्वन्द्व गोकुलिया गोसांईयों से तुमको क्यों इतना विरोध होगया कि उनके पूर्वज का घोर निन्दा तुमने बिना जीवन चरित्र को देखे लिख दिया। भला तुमको विचारना चाहता था कि जैसे अद्वैत मतका आचार्य शंकराचार्य हैं। तैसे ही शुद्धाद्वैत मत का आचार्य वल्लभाचार्य हैं। उनके विषय में जो तुमने झूठा लिखा कि त्रिदण्ड धारण करिके कुछ काल के बाद त्रिदण्ड छोड़कर गृहस्थ होगये। तो उनके विषय में ऐसा बुरा लेख लिखने में तुमको लज्जा

नहीं आई। भला जड़ा विचार करो उस महानुभाव को धर्मशास्त्रके अनुसार कितना नीचा तुम बताया देखो लिखा है कि ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थश्चवानप्रस्थो यतिस्तथा ।

उत्तमां वृत्तिमाश्रित्य पुनरावर्तयेद्यदि ॥

विष्णुस्मृ० अ० ४ श्लो० ३२ ॥

आरूढ़ पतितो ज्ञेयः सर्वधर्म बहिष्कृतः ।

निन्द्यश्च सर्व देवानां पितृणां च तथोच्यते ॥३३॥

इसके अनुसार आरूढ़ पतित तथा सब धर्मों से बाह्य तुम लिखा । और आरूढ़ पतित का विषय में लिखा है कि ॥

आरूढ़ पतितो हन्ति दशपूर्वान्दशापरान् ।

निस्तारयति तानेव यदि सम्यग्व्यवस्थितः ॥

अङ्गिरास्मृ० ॥

इसके अनुसार पहले और पीछे के दश पुरुषों का नाश-कर्ता तुमने लिखा । और ॥

यस्तु प्रव्रजितो भूत्वा पुनः सेवेत मैथुनम् ।

षष्ठिवर्ष सहस्राणि विष्टायां जायते कृमिः ॥

बह्वृचपरिशि० ॥

इसके अनुसार गोकुलियों के पूर्वज को साठ हजार वर्ष

मैलाका कृमि तुम बताया। इस झूठा गोकुलिया गोसांई के पूर्वज कि निन्दा लिखने से तुमको क्या लाभ हुआ। अब तुम देखो उनका ग्रन्थ में जैसा लिखा है। तैलङ्ग देशका अग्नि उपासक श्रेष्ठ लक्ष्मण भट्ट नाम के ब्राह्मण अपनी स्त्री के साथ पुत्र के लिये कई वर्षों तक घोर तपस्या किये तब स्वप्न में अग्नि देव उनसे कहे कि “चम्पारण्य” में तुम चले जावो वहाँ पर आग का बीचमें बच्चा बन कर मैं रहूँगा। मुझको गोद में लेकर तुम पुत्र समझना बस सुबह होते ही लक्ष्मणभट्ट अपनी स्त्रीके साथ तैलंग से चलि दिये। और कई मासों में चम्पारण्य में पहुँचे। तथा जैसा स्वप्न देखे थे वैसा ही बच्चा को देखे और गोदी में लेकर अपने को कृत कृत्य समझे। और वहाँ से भट्टजी काशी में आये तथा कुछ दिनों के बाद मर गये। तब तक वह बच्चा कुछ अध्ययन भी कर लिया था। इससे खूब पर्याटन करिके विष्णु स्वामी के मन्दिर में जोकर शिष्य हो गये। और वहाँ से फिर काशी में आये। और अपनी धर्मपत्नी के साथ काशी से ब्रजमें चले गये तथा वहाँ रह कर विष्णु संप्रदाय का खूब प्रचार किये। उन्हीं को वल्लभाचार्य कहते हैं। इससे सावित होगया कि त्रिदन्ड गोकुलिया गोसांईयों के पूर्वज नहीं धारण किया था। अब थोड़ा वृन्दवन निवासी एक दन्डी अन्धो विरजानन्द सरस्वती का शिष्य दयानन्द-सरस्वती निर्मित सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास

के लेख को देखो । सत्या० समु० ११ पृ० ३६२ पं० ४ तैलङ्गी लक्ष्मणभट्ट नामक ब्राह्मण विवाह कर किसी कारण से माता पिता और स्त्री को छोड़ काशी में जाके उसने संन्यास ले लिया । इससे साबित होता है कि एक दण्डी से वह भट्ट संन्यास लिया क्योंकि काशी में उस समय त्रिदण्डी का मठ नहीं था न तो विशेष रहते थे । संन्यास लेने के बाद सत्यार्थ० समु० ११ पृ० ३६२ पं० ६ स्त्रीने कहा कि यदि आप मेरे पति को मेरे साथ न करें तो मुझको भी संन्यास दे दीजिये तब तो उसको बुलाकर गुरु कहा कि तू बड़ा मिथ्यावादी है संन्यास छोड़ गृहाश्रम कर क्योंकि तूने झूठ बोल कर संन्यास लिया उसने पुनः वैसा ही किया संन्यास छोड़ उसके साथ हो लिया । इससे साबित हो गया कि एक दण्डी का कहने से फिर वह भट्ट गृहस्थ हो गया जोकि गोकुलिया गोसांईयों का पूर्वज है । भला जब कि एक दण्डी का शिष्य ही साबित कर दिया कि गोकुलिया गोसांईयों का पूर्वज त्रिदण्ड नहीं धारण किया था तो फिर तेरे बात को कौनसा मान सक्ता है भूँ का करो । आगे जो तुमने लिखा कि “इनसे पूछा जावे क्या एक दण्डधारी ने भी ऐसा पूर्वसे लेकर आज तक किसीने किया है” धन्य हो काशी में रहने वाला मुझसे एक दण्डियों का अत्याचार लिखवाने के लिये तुमने प्रश्न कर दिया बहुत से एक दण्डी मेरे प्रेमी हैं इससे लिखने में संकोच आता है । नहीं तो

जि० गाजिपुर मो० चाँडीपुर निवासी पं० भारखण्डे शर्मा और जि० गा० मो० खालिसपुर निवासी बाबू रचिनन्दन सिंह जी जिस समय काशी कोतवाली में दरोगा थे उस समय का जो एक दण्डियों का व्यभिचार का केश है उसका दिग्दर्शन मैं कराता। खैर जो पूछे हो उसका उत्तर ॥

अवश्यं भाविनो भावा भवन्ति महतामपि ॥

हितोपदेशः

इस वाक्य को अवलम्बन करिके लिखता हूँ अवलोकन करो। एक दण्डी दयानन्द सरस्वतीजी के और रमा बोई के चरित्र को "रमा महर्षि संवाद" पुस्तक में देख लो कि कैसा है। जि० आरा मो० सोनवर्षा निवासी रघुनाथ मिश्र का पुत्रको वि० सं० १९६१ एक दण्ड काशी के आश्रमियों ने दिया। और वह दुष्ट तीन मासके भीतर ही इन्द्रिय लोलुपता से एक दण्ड को फेंक कर गृहस्थ हो गया है जाचलो। और जि० गाजिपुर मो० मैनपुर निवासी एक लड़का को एक दण्डी राघवानन्द सरस्वती संन्यासी बनाये वह एक वर्षके बाद गृहस्थ होगया है। तथा जि० हुगली मो० गुप्तिपाड़ा एक दण्डिका मठके महन्त वेश्यागमन करने के कारण से वहां से हटादिये गये हैं। जिस मठपर वि० सं० १९६४ माघ शुक्ल एकादशीके मैमी ठहरा था वहां ही सब समाचार ज्ञात हुआ है। इस प्रकार के बहुत सा दुराचार एक दण्डियोंने किया है। और वर्तमान काल में जैसा अत्याचार काशी

असीघाट के तथा मछली बंदर के एक दंडी करते हैं तैसा कोई राक्षस भी नहीं किया है ।

विद्वज्ज०—पृ० ५ पं० १६ ॥

यदा तु विदितं तत्त्वं परंब्रह्म सनातनम् ।

तदैकदण्डं संगृह्य सोपवीतां शिखां त्यजेत् ॥

यह क्या वेद वाक्य मिथ्या है ।

चपे०—निर्व्वन्द्वश्रम “यदातु” इत्यदि जो वेदवाक्य तुमने लिखा तो इसकाअध्याय आदिक क्यों नहीं लिखा । मैंने महीधर भाष्ययुक्त यजुर्वेद को और सायनभाष्यसहित ऋगवेद सामवेद तथा अथर्ववेदको देखा उसमें यह वाक्य नहीं है । तो तुम क्यों वेदका नाम बेचते हो । देखो जिस हारीतको ॥

अथ परमहंसानाम संवर्तकारुणि श्वेतकेतु-
जडभरतदत्तात्रेयशुकवामदेवहारीतक्य प्रभृतयो-
ऽष्टौ ग्रासांश्चरन्तो योगमार्गे मोक्षमेव प्रार्थ-
यन्ते ॥ भिक्षुकोपनि० ॥

यह भिक्षुकोपनिषद् परमहंस बताया है वह कहते हैं कि ॥

त्रयस्तु वैष्णवा दण्डा यतेः काषाय वाससी ॥

वृद्धहारी तस्मृ० अ० ८ श्लो० ५० ॥

संन्यासी के तीनटो बाँस का दण्ड होना चाहिये । और ॥

यस्त्वेकं दण्डमालम्ब्य धर्मं ब्राह्मं परित्यजेत् ।
विकर्मस्थो भवेद्विप्रः स जाति नरकं ध्रुवम् ॥

वृद्धहा० अ० ८ श्लो० ५६ ॥

शिखायज्ञोपवितादि ब्रह्मकर्म यति स्त्यजेत् ।
सजीवन्नेव चण्डालो मृतः श्वानोऽभिजायते ॥ ५७ ॥

इन श्लोकोमें स्पष्ट एक दण्डग्रहन करनेवाला नरकगामी और शिखासूत्र परित्यागी को चण्डाल कहे हैं । और अवलोकन करो ॥

नरायणं पद्मभवं वशिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्र-
पराशरं च ॥

इस तेरी गुरु परंपराका श्लोकमें पठित पराशरमहर्षि कहते हैं कि ॥

त्रिदण्ड मुपवीतं च शिखा कषायमम्बरम् ।
कमण्डलुश्च भिन्नं हि यतीनां तु विधीयते ॥

पराशरीयधर्मशा० उत्तरखं० अ० ५ श्लो० १३ ॥

त्रिदण्ड यज्ञोपवीत शिखा काषायवस्त्र और कमण्डलु ये सबसंन्यासियों के लिये विहित हैं । और नारद परिव्राजको पनिषद्में लिखा है कि ॥

सर्वभूतहितः शान्तस्त्रिदण्डी सकमण्डलुः ।

एकारामः परिव्रज्य भिक्षार्थं ग्राममाविशेत् ॥

नारद० उपदे० ३ श्रु० ५५

इसमें भी त्रिदण्डी ही पद आया है। तथा शास्त्रायनीयो-
पनिषद्में लिखा है कि ॥

त्रिदण्डमुपवितं च वासः कौपीनवेष्टनम् ।

शिक्ष्यं पवित्र मित्येत द्विभृयाद्यावदायुषम् ॥

शाब्द्या० श्रु० ७ ॥

संन्यासी जब तक जिये तब तक त्रिदण्ड यज्ञोपवीत
कौपीनवेष्टन वस्त्र शिक्ष्य और पवित्राको धारण करे। इस
से साबित हो गया कि संन्यासीको शिखासूत्र परित्याग
करने को नहीं लिखा है। दुर्जनतोष न्यायसे “यदातु” इसको
वेदवाक्यमान भी लिया जाय तौभी तुम्हारा इष्ट सिद्ध नहीं
होता है क्योंकि उसका अर्थ यह है कि जब सनातन पर
ब्रह्मतत्त्व विदित हो जाय तब एक ज्ञान दण्डको ग्रहणकरिके
त्रिवृत यति से अन्या श्रमोचित यज्ञोपवीतके सहित शिखाके
अभिमानको त्याग करदे। अन्यथा श्रुतियोंमें विरोध होगा
क्योंकि परमहंसोपनिषद् में लिखा है कि ॥

सर्वान्कामान्परित्यज्य अद्वैते परमे स्थितिः ।

ज्ञानदण्डो धृतो येन एकदण्डी स उच्यते ॥

परमहंस ॥

इससे सिद्ध होगया कि ज्ञान दण्ड को जो धारण करता है उसको एक दण्डी कहते हैं। वेणुके एक दण्ड नहीं विधान हैं। और यज्ञोपवीत परित्याग करने के लिखा वह भी यति से अन्य आश्रमोचित यज्ञोपवीत के लिये कहा है क्योंकि आरुणिकोपनिषद्में लिखा है कि ॥

विद्वान् त्रिवृतसूत्रं त्यजेत् ॥ आरुणि० श्रु० ३ ॥

विद्वान्यति त्रिवृत् पूर्वोश्रमोचित यज्ञोपवीत को त्याग दे। इससे सिद्ध होगया कि त्रिवृतसूत्रको ही त्याग करे यत्याश्रमोचित यज्ञोपवीत को सर्वदा धारण करे। तथा शिखा को परित्याग करने के जो कहा वह शिखाभि मान वाचक है क्योंकि मेधातिथि कहे हैं कि ॥

कक्षोपस्थशिखावर्ज ऋतुसन्धिषु वापयेत् ॥ मेधाति०

इससे सिद्ध होगया कि शिखा रखना चाहिये। और पहिले मैं लिख चुका हूँ ॥

त्रिदण्डमुपवीतं च शिखाकाषायमम्बरम् ॥

परा० उत्तरखं० अ० ५ श्लो० १३ ॥

इससे सिद्ध होगया कि शिखा सूत्र परित्यागी संन्यासी नहीं हो सकता है।

विद्वज्जनवि० पृ० ६ पं० २० ॥

चतुर्धा भिक्षवः प्रोक्ताः सर्वे चैव त्रिदण्डिनः ॥

चार प्रकार के संन्यासी हैं वह सब त्रिदण्डी हैं तो पूछना चाहिये कि क्या तीन वेणु दण्डों का विधान है या ॥

वाग्दण्डः कर्मदण्डश्च मनोदण्डश्च ते त्रयः ।
यस्यै ते नियता दण्डाः स त्रिदण्डी महायतिः ॥

श्रुत्युक्तवागादि त्रिदण्डका विधान है ।

चपेटि०—निर्द्वन्द्व चार प्रकारके जो संन्यासी हैं वे सभी त्रिदण्डी हैं और वे सभी तुमने जो नारद परब्राह्मणकोपनिषद्का छठवां उपदेश के पांचवीं “वाग्दण्डः” यह श्रुति लिखा है इसके अनुसार अव्यक्त वाग्दण्ड कर्मदण्ड और मनोदण्ड को भीतर रखते हुये बाहर में भी व्यक्तिविष्णुलिंग त्रिदण्ड को रखते हैं । यदि एक किसी भी विष्णुलिंग को त्याग कर वे लोग किसी एक को ग्रहण करें तो पतित हो जायेंगे । क्योंकि लिखा है कि विष्णु लिंगं द्विधा प्रोक्तं व्यक्तमव्यक्त मेव च । तयोरेक मपि त्यक्त्वा पतत्येव न संशयः ॥

शा० श्रु० ६ ॥

विष्णु के चिन्ह व्यक्त और अव्यक्त भेद से दो प्रकार के कहा गया है उनमें से एक को भी छोड़कर निश्चय यति पतित हो जाता है ॥ इस से साबित होगया कि बाहर भीतर दोनों चिन्ह होना चाहिये । तिसमें भी तरके वागादि दण्डसे युक्तत्रिदण्डी को तो महायति तुमने लिख चुका इसमें कोई भी तुमको विवाद नहीं है । और चार प्रकार के जो संन्यासी

हैं वे सभी भीतरी त्रिदण्डी ही संन्यासी हैं यह भी अपना लेख से तुम मानहीं लिया । अब विवाद रहा कि वे चार प्रकार के संन्यासी बाहर में त्रिदण्डी वेणुका रखें या नहीं । यदि उपनिषदादि ग्रन्थों में प्रमाण हो तब तो चारों संन्यासीयोंको अवश्य ही त्रिदण्ड ग्रहण करना चाहिये । इससे आंख खोलकर प्रमाणों को देखो ॥

अथ भिक्षूणां मोक्षार्थिनां कुटीचकबहूदक-
हंसपरमहंसाश्चेति चत्वारः । कुटीचकानाम
गौतमभरद्वाजयाज्ञवल्क्यवशिष्ठ प्रभृतयो ऽष्टौ
ग्रासांश्चरन्तो योगमार्गे मोक्षमेव प्रार्थयन्ते ॥
भिक्षुकोप० ॥

इससे कुटीचक १ बहूदक २ हंस ३ परमहंस ४ ये चार प्रकारके संन्यासी और गौतम १ भरद्वाज २ याज्ञवल्क्य ३ वशिष्ठ ४ ये चार महर्षि कुटीचक ज्ञात होते हैं ॥

कुटीचकः शिखायज्ञोपवीती दण्डकमण्डलु-
धरः कौपीनसाटीकन्थाधरः पितृमातृगुर्वारा-
धनपरः पिठरखनित्रशिक्ष्यादिमात्रसाधनपर एक-
त्रान्नादनपरः श्वेतोर्ध्वपुण्ड्रधारी त्रिदण्डः ॥
संन्यासौ० श्रु० १३ ॥

इससे सावित होता है कि कुटीचक संन्यासी त्रिदण्डकमण्डलु शिखा यज्ञोपवित आदिको धारण करे। कुटीचक सब त्रिदण्डी हैं यह सावित हो गया। अब बहूदकको देखो ॥

अथ बहूदका नाम त्रिदण्डकमण्डलु शिखा-
यज्ञोपवीतकाषायवस्त्रधारिणो ब्रह्मर्षिगृहेमधुमासं
वर्जयित्वाष्टौ ग्रासान्भैक्षाचरणं कृत्वा योगमार्गे
मोक्षमेव प्रार्थयन्ते ॥ भिक्षुको० ॥

त्रिदण्डं कुण्डिकां चैव भिक्षाधारं तथैव च ।

सूत्रं तथैव गृहणीयान्नित्यमेव बहूदकः ॥

विष्णुस्मृ० अ० ४ श्लो० १७ ॥

इन सबोंसे सावित होता है कि बहूदक संन्यासी त्रिदण्डकमण्डलु शिखा सूत्र कषायवस्त्रको धारण करे। सब बहूदक संन्यासी त्रिदण्डी ही है यह निश्चय हो गया अब हंसको अवलोकन करो ॥

अथ हंसानाम ग्राम एकरात्रं नगरे पञ्चरात्रं
क्षेत्रे सप्तरात्रं तदुपरि न वसेयुः गोमूत्रगोमया-
हारिणो नित्यं चान्द्रायणपरायणा योगमार्गे
मोक्षमेव प्रार्थयन्ते ॥ भिक्षु० ॥

हंसका विषयमें बाह्यचिन्ह बह्मदकके तुल्य जानना चाहिये
क्योंकि लिखा भी है कि ॥

यज्ञोपवीतं दण्डं च वस्त्रं जन्तु निवारणम् ।

अयं परिग्रहो नान्यो हंसस्य श्रुतिवेदिनः ॥

विष्णुस्मृ० अ० ४ श्लो० २१ ॥

इससे साबित हो गया है कि हंस संन्यासी यज्ञोपवित
दण्ड वस्त्र बह्मदक के समान धारण करे। अब परमहंसका
विषयमें देखो ॥

अथ परमहंसा नाम संवर्तकारुणिश्चेतकेतु-
जडभरतदत्तात्रेय शुकवामदेवहारीतक प्रभृतयो-
ऽष्टौग्रासांश्चरन्तो योगमार्गे मोक्षमेव प्रार्थ-
यन्ते ॥ भिक्षुः ॥

इस श्रुतिमें पठित परमहंसहारित कहे हैं कि ॥

त्रयस्तु वैणवा दण्डायतेः कषायवाससी ॥

बृद्धहारी० अ० ८ श्लो० ५० ॥

तीन वेणुके दण्ड और कषाय वस्त्र होना चाहिये। वस
परमहंसजी कह दिये अब दूसरेके जरूरत नहीं है। और देखो ॥

तत्र परमहंसानाम् संवर्तकारुणि श्वेतकेतु दुर्वास
ऋभुनिदाघ जडभरतदत्तात्रेयरैवतक प्रभृतयः ॥

जावालो० श्रु० ६ ॥

इस श्रुति में पठित परमहंसदुर्वासामहर्षिजी त्रिदण्ड धारण किये हैं यह प्रथम मैं लिख चुका हूँ । इससे सावित हो गया कि परमहंस संन्यासी भी त्रिदण्ड कमण्डलु शिखा यज्ञोपवीत कषाय वस्त्रको धारण करे । चार प्रकारके पूर्वोक्त संन्यासियोंका वाह्य जिन्ह समान है क्योंकि लिखा है कि—

अथ खलु सौम्य कुटीचको बहूदको हंसः
परमहंस इत्यते परिव्राजकाश्चतुर्विधा भवन्ति ।
सर्व एते विष्णुलिङ्गिनः शिखिनोपवीतिनः शुद्ध-
चित्ता आत्मानमात्माना ब्रह्म भावयन्तः शुद्ध-
चिद्रूपोपासन रता जपयमवन्तो नियमवन्तः शु-
शीलिनः पुण्यश्लोका भवन्ति । तदेतद्वचाभ्यु-
क्तम् । कुटीचको बहूदकश्चापि हंसः परमहंस
इव वृत्त्या च भिन्नाः । सर्व एते विष्णुलिङ्गं
दधाना वृत्त्या व्यक्तं बहिरन्तश्च नित्यम् ॥

शा० श्रु० ११ ॥

और भी थोड़ा देख लो ॥

दण्डं तु वैणवं सौम्यं सत्वचं समपर्वकम् ।

पुण्यस्थलसमुत्पन्नं नानाकल्मषशोधितम् ॥

संन्यासो० श्रु० ६

अदग्ध महतं कीटैः पर्वग्रन्थिविराजितम् ।
 नासादघ्नं शिरस्तुल्यं भ्रूवोर्वाविभृयाद्यतिः ॥१०॥
 दण्डात्मनोस्तुसंयोगः सर्वथातु विधीधीयते ।
 न दण्डेन विनागच्छेदिषुक्षेपत्रयं बुधः ॥ ११ ॥

तथा अन्यत्र भी लिखा है कि—

त्रिदण्डं वैष्णवं सम्यक् सन्ततं समपर्वकम् ।
 वेष्टितं कृष्णगोवालरज्जुमच्चतुरङ्गुलम् ॥

हारीतस्मृ०० अ० ६ श्लो० ६ ॥

इन पूर्वोक्त प्रमाणोंसे स्पष्ट साबित हो गया कि चार प्रकार के जो संन्यासी हैं। वे सभी तीन ठो वेणु के दण्ड रखते हैं। इससे वे सभी संन्यासी त्रिदण्डी ही हैं।

विद्वज्ज०—पृ०७ पं ६ तुम एक जगह पर ही बैठे हुए अनेक प्रकारके फल और दूध ही क्यों पाया करते हो ।

चपेटि०—धन्य हो निर्द्वन्द्व मेरी शिक्षा भी तुमसे नहीं देखी गई। नगवामें तेरे लिये भी फल और दूध मैं दिलवाया था। और अन्न भोजन करनेपर मुझसे अधिक फलादिक पा जाता था। खैर अभी संन्यासी की शिक्षा कितनी प्रकारकी होती है इसका भी ज्ञान तुमको नहीं है देखो संन्यासोपनिषदमें लिखा है कि—

माधूकरमसंकलुप्तं प्राक्प्रणीतमयाचितम् ।

तात्कालिकं चोपपन्नं भैक्षं पञ्जविधं स्मृतम् ।

संन्या० श्रु० ६५ ॥

इससे संकल्पपरहित माधूकर १ प्राक्प्रणीत २ अयाचित ३ तात्कालिक ४ उपपन्न ५ इस भेदसे पाँच प्रकारकी भिक्षा साबित होती है । उसमें

मनः संकल्परहितां स्त्रीन्गृहान्पञ्च सप्त वा ।

मधुमक्षिकवत्कृत्वा माधूकरमिति स्मृतम् ॥ ६६ ॥

मनमें संकल्प से रहित] तीन पाँच सात घर मधुमक्खीके समान थोड़ी भिक्षाको ग्रहण करना उसको संकल्प रहित माधूकर कहते हैं ॥ ६६ ॥ और

प्रातःकाले च पूर्वैद्युर्यज्ञक्तैः प्रार्थितं मुहुः ।

तद्भैक्षं प्राक्प्रणीतं स्यात्स्थितिं कुर्यात्तथापि वा

पहिले दिन प्रातःकालमें जो बारम्बार भक्तों से प्रार्थना की जाती है इसके बाद जो भिक्षा की जाती है उसको प्राक्प्रणीत कहते हैं ॥ ६७ ॥ और ॥

भिक्षाटन समुद्योगाद्यनेकेन निमत्रितम् ।

आयाचितं तु तद्भैक्षं भोक्तव्यं च मुमुक्षुभिः ॥ ६८

भिक्षा मांगनेसे पहले जो कोई निमन्त्रण द्वारा भिक्षा करता है उसको अयाचित भिक्षा कहते हैं ॥ ८ ॥ तथा ।

उपस्थानेन यत्प्रोक्तं भिक्षार्थं ब्राह्मणेन तत् ।

तात्कालिकमिति ख्यातं भोक्तव्यं यतिभिस्तदा ॥६९॥

स्थानका पासमें ब्राह्मण से जो भिक्षा के लिये कहा गया हो उसको तात्कालिक भिक्षा कहते हैं । और ॥

सिद्धमन्नं यदानीतं ब्राह्मणेन मठं प्रति ।

उपपन्न मिति प्राहुर्मुनयो मोक्षकाक्षिणः ॥ ७०॥

सिद्ध अन्न ब्राह्मण करके जो यति का मठके प्रति लाय जाता है उसको मोक्ष चाहनेवाले मुनि सब उपपन्न भिक्षा कहते हैं ॥ ७० ॥ और विष्णुस्मृतिमें लिखा है कि—

याचितायाचिताभ्यां च भिक्षाभ्यां कल्पयेस्थितम् ।

साधुकारं याचितं स्यात्प्राक्प्रणीतमयाचितम् ॥

विष्णुस्मृ० अ० ४ श्लो० १० ॥

मांगने से या बिना मांगे जो मिल जाय उसी भिक्षासे अपना निर्वाह करे । इन प्रमाणों के अनुसार प्राक्प्रणीत ओर अयाचित भिक्षा से मैं अपना निर्वाह करता हूँ । तेरी छाती क्यों फटती है । और तुमने जो लिखा कि फल और दूध ही क्यों पाया करते हो । इस विषयमें देखो लिखा है कि—

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः
स्मृतिलम्भे सर्व ग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ॥

छान्दो० अ० ७ खं० २६ मं० २ ॥

आहार शुद्धिसे सत्त्व शुद्ध होता है और सत्त्व शुद्ध होनेसे ध्रुवास्मृति होती है तथा स्मृति लाभ होनेपर सब बन्धन निवृत्त हो जाता है ॥ २ ॥ इससे फल और दूध ही पाया करता हूँ । और महाभाष्के पशुपशाहिकमें “पयोव्रतो ब्राह्मणः” यह लेख है इससे भी मैं दूध पाया करता हूँ । तथा नारदपरिव्राजकोपनिषद्में लिखा है कि—

तुरीयातीतौ गोमुखः फलहारी ॥

नारद० उपदे० ५ श्रु० १ ॥

इसके अनुसार मैं फलाहारी हूँ । और योगाभ्यास में अच्छा रहता है तथा आलस्य निद्रा आदिक भी कम होता है तथा आचार्य की आज्ञा है इससे मैं फल और दूधही पाया करता हूँ । धन्य तुम्हारा पक्षपात है कि तुम्हारा दशनामी भाई हाथी घोड़ा का सवारी करे पानखांय कोठा बनावे जमीन खरीदे धूम्रपान करे तथा शिखासूत्र परित्याग करने पर भी काशी ऐसा पुण्य क्षेत्रमें नित्यप्रति पलङ्गपर परस्त्रियोंके और लौण्डाओंके साथ रमण करें तौ भी उनके विरोधमें तेरा कलम नहीं चली । और शास्त्रानुसार होता हुआ भी मेरे फलाहारका विषयमें तेरी लेखनी चली । अब उत्तर पाकर अपना हठको छोड़ो सत्यमार्गको ग्रहण करो ।

विद्वज्ज०—पृ० ७ पं० २० यह त्रिदण्ड मत यातो छल और प्रपञ्चके वास्ते है या इनके मतसे बहूदकके वास्ते हैं ।

चपेटि०—निर्व्वन्द्व यह वैदिक त्रिदण्ड धारण मत है यदि छल और प्रपंचके लिये होता तो वशिष्ट्याज्ञचल्क्य आदिक त्रिदण्डी क्यों होते और शाळ्यायनीयोपनिषद् में—

त्रिदण्डं वैष्णवं लिगं विप्राणां मुक्तिसाधनम् ।
निर्वाणं सर्वधर्माणामिति वेदानुशासनम् ॥

शा० श्रु० १० ॥

ऐसा वाक्य कैसे होता । यदि सच्चा विचार किया जाय तो छल और प्रपंचके बढ़ानेके लिये कलियुगसे एक दण्ड मत चला है । यदि पहले से होता तो महाभारतादिक इतिहासोंसे ज्ञात होता कि अमुक महर्षि एक दण्ड धारण किये थे । सो नहीं पाया जाता है इससे बौद्धोंको छलनेके लिये तथा कलिमें प्रपंच बढ़ानेके लिये एक दण्डमत है । और जब कि परमहंस दुर्वासा महर्षि त्रिदण्ड ग्रहण किये थे तब बह्मदकके वास्ते त्रिदण्ड है यह पगलाके समान तेरा बात विचारवाला पुरुष नहीं मान सकता है कौवाके के समान काँय काँय किया करो ।

विद्वज्जनवि०—पृ० ८ पं० २ ॥

परमहंसः शिखायज्ञोपवीतरहिः पञ्चगृहेषु
करपात्री एक कौपीनधारी शाटीमेकामेकं वैष्णवं
दण्डमेकशाटीधरो वा भस्मोद्धूलनपरः सर्वत्यागी ॥

ऐसा परमहंसके वास्ते उपनिषद्में लिखा है और ये तो

परमहंसके वास्ते त्रिदण्ड लिखते हैं सो भी पूछना चाहिये कि जैसा परमहंसको एक वेणुदण्डका विधान है किसी उपनिषद्में तीन वेणुदण्डोंका भी विधान कहीं पर है ।

चपेटिका—निर्द्वन्द्वाश्रम उपनिषद्का अर्थ समझना बड़ा विद्वान् का काम है जिसमें कि पूर्व पर में विरोध न होवे इससे संन्यासोपनिषद् का जो तेरहवीं श्रुति एक दण्डके लिये प्रमाण दिये हो सो अर्थ नहीं समझकर इससे पहले उस श्रुति का अर्थ मैं लिखता हूँ “परमहंस संन्यासी शिखाके अभिमान से तथा यतिसे अन्याश्रमोचित यज्ञोपवीत से रहित पांच घरोमें करपात्री एक कौपीन तथा एक शाटीधारी और एक=प्रधान वाँस के दण्ड अर्थात् त्रिदण्ड धारण करनेवाला तथा एक शाटी-धर भस्मोद्धूल न परकर सर्वत्यागी है” यही श्रुत्यर्थ है । यदि ऐसा अर्थ न मानकर शिखा और यज्ञोपवीतसे रहित “शिखा-यज्ञोपवीतरहितः” इस पद का अर्थ करोगे तो ॥

परिव्राजकाश्चतुर्विधा भवन्ति सर्व एते
विष्णुलिङ्गिनः शिखिनोपवीतिनः ॥ शा०श्रु० ११

इस श्रुति में चारों प्रकार के संन्यासियों को शिखा सूत्र तथा त्रिदण्डवाला वर्णन किया गया है । इससे विरोध पड़ेगा और ।

उपवीती कुटुम्बी यात्रामात्रं प्रतिगृहणन्मनुष्यात् ।

शा० श्रु० १८ ॥

इस श्रुतिमें पठित “उपवीती” पद से तथा ॥

ऋतुसन्धौ मुण्डयेन्मुण्डमात्रं नाधो नाक्षं
जातु शिखां न वापयेत् ॥ शाब्द्या० श्रु० २० ॥

इससे श्रुतिमें पठित “शिखां न वापयेत्” इन पदों से भी विरोध पड़ेगा । इससे पूर्व्वोक्त मेरा ही अर्थ ठीक है । और ऐसे ही “एकं वैणवं दण्डम्” इसका पूर्व्वोक्त अर्थ मानकर एक बांसका दण्ड ऐसा अर्थ करोगे तो ॥

ज्ञानदण्डो धृतो येन एक दण्डी स उच्यते ।
काष्ठ दण्डो धृतो येन सर्वासीज्ञान वर्जितः ॥
स याति नरकान्धोरान्महारौख संज्ञितान् ॥

नारदप० उपदे० ५ श्रु० २ ॥

इस श्रुति से अत्यन्त विरोध पड़ेगा । इससे और ॥

एकोऽन्यार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा ।

साधारणे समानेऽल्पे संख्यायां च प्रयुज्यते ॥

इस प्रमाणसे “एकं वैणवम्” यहाँ पर एक शब्द का पूर्व्वोक्त प्रधान ही अर्थ ठीक है । और प्रधान त्रिदण्ड ही है क्योंकि लिखा है कि ॥

त्रीन्दण्डानङ्गुलिस्थूलान्वैणवान्मूर्ध्निऽसंमितान् ॥

बौद्धायनस्मृतिः ।

इन प्रमाणों से त्रिदण्ड वेणु के धारण करनेवाला यह पूर्वोक्त अर्थ ही ठीक है। शाठ्यायनीयोपनिषद् की ग्यारहवीं श्रुतिमें स्पष्ट त्रिदण्ड तथा शिखा और यज्ञोपवीत परमहंस संन्यासी के लिये विधान है। इससे सिद्ध हो गया कि त्रिदण्ड धारण करनेवाला ही परमहंस संन्यासी है।

विद्वज्ज०—पृ० ८ पं० १२ और हंस संन्यास के वास्ते भी त्रिदण्डका विधान उपनिषदों में नहीं है क्योंकि प्रयागराज झुँसी हंस तीर्थपर एक संन्यासी रहते हैं उनके पास एक श्वेत दण्ड श्वेत वस्त्रादि ही है।

चपेटि०—निर्द्वन्द्व ॥

कुटीचको बहूदको हंसः परहंस इत्यते
परिव्राजकाश्चतुर्विधा भवन्ति सर्व एते विष्णु
लिङ्गिनः शिखिनोपवीतिनः ॥ शाठ्याय०
श्रु० ११ ॥

इस श्रुतिमें हंस संन्यासी के लिये भी स्पष्ट त्रिदण्ड तथा शिखा सूत्र का वर्णन है। और हंस का लक्षण पहले भी मैं लिख चुका हूँ इससे यहां इतनाही पर्याप्त है। तुमने सफेद वस्त्रादिक हंसके लिये लिखा तो इसमें कोई श्रुतिस्मृतिका प्रमाण क्यों नहीं लिखा गाल बजानेसे काम नहीं चलेगा देखो चारो संन्यासियोंके मनुस्मृतिमें बाह्य चिन्ह समानही लिखा है कि—

बलुटसकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान् ॥

मनु० अ० ६ श्लो० ५२ ॥

इस श्लोकमें “कुसुम्भवान्” पद है इससे सफेद वस्त्र ‘यति’ के शास्त्र से विरुद्ध है। यदि कहो कि हंसनाम होनेसे हंस पक्षि के समान सफेद वस्त्रादिक होना चाहिये। तो तुल्य न्यायसे सर्वाङ्ग सफेद जिसका हो वही हंस संन्यासी हो सकता है। इससे तुम्हारा कथन भ्रान्ति मूलक हैं। जाकर प्रयागराज दारागञ्ज में अब से भी देख लो वहां पर एक दाक्षिणात्य हंस संन्यासी रहते हैं। जो कि त्रिदण्ड शिखा यज्ञोपवीत काषाय वस्त्र और ऊर्ध्वपुण्ड को भी धारण करते हैं। इससे साबित हो गया कि त्रिदण्डी ही हंस संन्यासी होते हैं।

विद्वज्ज०—पृ० ६ पं० २ कितने रामानुज सम्प्रदाय को त्याग कर एक दण्ड को ग्रहण किया और कर रहे हैं और रामानुज की और उनकी सम्प्रदायकी महा निन्दा कर रहे हैं।

चपेटि०—निर्व्वन्द्व अभी तुमको जिस सम्प्रदाय का नाम तक ज्ञात नहीं है उसके विषयमें लेखनी क्यों उठाया। धन्य निर्लज्ज तुम हो कि श्री सम्प्रदायको रामानुज संप्रदाय लिख दिया खैर एक दण्डत्रिदण्ड का विचारमें इसका क्या प्रयोजन था “अन्यदु-कमन्यद्धान्तम्” इसके समान तुमने किया। भला यह तो विचार करना चाहता था कि त्रिदण्ड को त्याग कर किसने एक दण्डको ग्रहण किया सो तो विचार नहीं किया क्योंकि त्रिदण्ड धारण करनेवाले कभी त्रिदण्डको परित्याग ही नहीं किये हैं

न तो करते हैं। अब देखो जिनके दुनिया जानती है ऐसा उत्कट विद्वान् काशी निवासी यादव प्रकाश एक दण्डी एक दण्डको त्याग कर त्रिदण्डको ग्रहण किया है और त्रिदण्डी धर्मके लिये “यतिधर्मसमुच्चय” ग्रन्थ को बनाया है यह “यादव प्रकाश जीवनचरित” में स्पष्ट लिखा हुआ है। और काशी निवासी महा विपश्चित् यज्ञमूर्ति एकदण्डी एकदण्ड को छोड़कर श्रीरङ्गक्षेत्र में त्रिदण्ड ग्रहण किया है यह “यज्ञमूर्ति जीवनचरित” में स्पष्ट लिखा हुआ है। तथा दयानन्द सरस्वती एक दण्डको त्यागकर आर्यसमाज स्थापन किया है। और करपात्रोजी ओ गैरह काशीके बहुत से विद्वानोंने एक दण्डको परित्याग कर दिया क्या त्रिदण्ड को भी परित्याग किसीने किया है नहीं। और भारतमें परब्रह्म की निन्दा करनेवाले कितने वर्तमान हैं तो यदि विशिष्टा द्वैत सिद्धान्त के तथा जगद्गुरु रामानुजाचार्य स्वामोजी की निन्दकोनें निन्दा कि तो इसमें क्या आश्चर्य है। क्या तेरे सिद्धान्तके और आचार्य के निन्दक कोई नहीं है।

विद्वज्जन०—पृ० ६ पं० ७ स्वामी माधवाश्रमजी स्वामीओं काराश्रमजी स्वामीशिवरामाश्रमजी यह चक्रांकित होते हुए भी संन्यास ग्रहण किया है।

चपे०—इससे क्या हुआ बंगालमें लाखों माया वादि शिखा सूत्रको परित्याग कर यवन हो गये हैं और जनार्दनश्रम ब्रह्मस्वरूपाश्रम शंकराश्रम माधवाश्रम वितरागानन्द सरस्वती कृष्णानन्द सरस्वती एक दण्डको त्याग कर मौज करते हैं यदि तेरे लेखानुसार वे माधवाश्रम प्रभृति हैं तो

ये तु वै हेतुकं वाक्यमाश्रित्यैव स्ववाग्वलात् ।
वैष्णवं प्रतिषिध्यन्ति ते लोकायतिकाः स्मृताः ॥

वृद्धहा० अ० ८ श्लो० २६ ॥

यो यत्तु वैष्णवं लिङ्गं धृत्वा च तमसावृतः ।
त्यजेच्चैद्वैष्णवं धर्मं सोऽपि पाषण्डतां व्रजेत् ॥३०

इन श्लोकोंके अनुसार वे लोग लोकायतिक हैं और पाषण्डताको प्राप्त करेंगे। उससे भागवतों का कुछ भी हानि ही है। परन्तु तुम विचार कर लिखा करो संन्यास का विचारमें विषयान्तर नहीं होना चाहिये।

विद्वज्जनवि०—पृ० ६ पं० १० यह प्रमाण उपनिषद्का क्या झूठ है ॥

कौपीनयुगलं कन्था दण्ड एकः परिग्रहः ।

यते परमहंसस्य नाधिकं तु विधीयते ॥

चपेटि०—निर्व्वन्द्वश्रम नारदपरिव्राजकोपनिषद् के दूसरा उपदेश को अठारहसवीं श्रुति तुमने जो प्रमाण दिया सो ठीक है परन्तु तुमने जो “दण्ड एकः परिग्रहः” इसका अर्थ वेणुका एक दण्ड धारण करना ऐसा समझा सो ठीक नहीं है क्योंकि पूर्वोक्त उपनिषद्में ही लिखा है कि—

ज्ञान दण्डो धृतो येन एक दण्डी स उच्यते ॥

नारद० उपदे० ५ श्रु० २ ॥

ज्ञानदण्डको जो धारण करता है उसको एक दण्डी कहते हैं। इससे सिद्ध हो गया कि वेणु के एक दण्ड धारण करने का शास्त्र में विधान नहीं है।

विद्वज्ज०—पृ० ६ पं १४ इनकी मूर्खता को देखिये कि मंत्रके पाठ को कैसे बदलते हैं ॥

एक दण्डो धृतो येन सर्वाशी ज्ञानवर्जितः ।

स याति नरकान्धोरान्महारौरव संज्ञितान् ॥

एकदण्डो धृतो येन, यह पाठ ऐसा नहीं है यह शुद्ध पाठ है। काष्ठ दण्डो धृतो येन।

चपेटि०—निर्व्वन्द्व “यतोन्द्रधर्ममार्तण्डः” ग्रन्थ के सातवां पेज को देखते देखते तुम अन्धा हो गया था कि लिखा हुआ यमस्मृति यह शब्द नहीं तुमको दिखाया। मूर्खता तो तेरी है कि यमस्मृति के श्लोक को मन्त्र लिख दिया छि छि छि अरे तुम को मन्त्र का ज्ञान नहीं फिर लेख कैसे प्रारम्भ किया। खैर अब से मन्त्र का लक्षण जान लो ॥

तच्चोदकेषु मन्त्राख्या ॥ मीमां. अ. २ पा. १ सू. ३२ ॥

प्रेरणा लक्षण श्रुति ही का नाम मन्त्र है। यदि यमस्मृति को देखा रहता तो नहीं भ्रम होता मेरे पास आकर यमस्मृति को देख लो एकदण्डो धृतो येन यही पाठ है ॥

काष्ठदण्डो धृतो येन सर्वाशी ज्ञानवर्जितः ।

स याति नरकान्धोरात्महारौरव संज्ञितान् ॥

नार० उपदे० ५ श्रु० २ ॥

इस श्रुति में ऐसा पाठ है परन्तु तुम तो यमस्मृति को देखा नहीं कोराही लिखने बैठ गया ।

चिद्वज्ज०—पृ० १० पं० १ ॥

त्रयोदण्डो धृतो येन सर्वाशी ज्ञान वर्जितः ।

त्रिपाद विभूतिमापन सर्व दुःख विनश्यति ॥

चपेटि०—धन्य तेरी निर्लज्जता के है कि त्रिदण्ड के निन्दा के लिये श्लोक बनाने लगा तौ भी नहीं ठीक बना क्योंकि त्रयो दण्डाः ऐसा होगा परन्तु पण्डितजन तेरा बना हुआ श्लोक को देखकर समझ जायेंगे कि इस पत्र के लिखने वाले का लघुकौमुदी और श्रुतबोध भी नहीं पढ़ा है डूब मरो ।

चिद्वज्जन० पृ० १० पं० ४ ॥

एक दण्ड समाश्रित्य जीवन्ति बहवो द्विजाः ।

न तेषामपवर्गोऽस्ति लिङ्गमात्रोप जीविनाम् ॥

यह भी पाठ ऊपर के ही समान समझो ।

चपेटि०—निर्व्वन्द्व इस पूर्व्वोक्त श्लोक के विषय में तो “यतीन्द्रधर्ममार्तण्डः” ग्रन्थ में स्पष्ट लिखा है कि विष्णुस्मृ० अ० ४ श्लो० ३४ का है । तो इस श्लोक में ऊपरके समान क्या समझया क्या झूठ बोलने के वास्ते मुण्ड मुड़ मुड़ाया है ।

विद्वज्ज० पृ० १० पं० ७ ॥

त्रीनदण्ड समाश्रित्य जीवन्ति बहवो द्विजाः ।
न तेषामपवर्गोऽस्ति ॥

ऐसा भी सत्य है।

चपेटि०—निर्व्वन्द्व तुम त्रिदण्ड के निन्दात्मक जो श्लोक बनाया इससे तेरा अध्ययन का पता चल गया कि छन्द भी नहीं बैठाने आया याद रखो जो बात लिखो वह ग्रन्थका प्रमाण देखर नहीं तो फल अच्छा नही निकलेगा

विद्वज्जन० पृ० १० पं० १० ॥

यस्त्वेकदण्डमालम्ब्य ब्राह्मं कर्म यतिस्त्यजेत् ।
स चाण्डालो महापापी रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

जो एक दण्ड लेकर ब्राह्मण के कर्म को छोड़ देता है वह डोम और बड़ा भारी पापी है मरने पर रौरव नरक में जाता है। यह लिखा है।

चपेटि०—निर्व्वन्द्व पूर्व्वोक्त श्लोक मेरो बनाया नहीं है कि मुझसे द्वेष करते हो बल्कि तेरी गुरु परम्परा में पठित जो पराशर महर्षि हैं उनकी ही स्मृति का श्लोक है। मुझसे क्यों द्वेष करते हो परमहंस हारीत महर्षि भी तो वैसा ही कहे हैं देखो ॥

यस्त्वेकं दण्डमालम्ब्य धर्मं ब्राह्मं परित्यजेत् ।

विकर्मस्थो भवेद्विप्रः स याति नरकं ध्रुवम् ॥

बृद्धहा० अ० ८ श्लो० ५६ ॥

शिखा यज्ञोपवितादि ब्रह्मकर्म यति स्त्यजेत् ।

स जीवन्नेव चण्डालो मृतः श्वानोऽभिजायते । ५७।

स्वरूपेणैव धर्मस्य त्यागोहानि भवे ध्रुवम् ।

कर्मणां फल संत्यागः संन्यासः समुदाहृतः ॥ ५८ ॥

अनाश्रितः कर्मफलं कृत्यंकर्म समाचरेत् ।

स संन्यासी च योगी च समुनिः सात्त्विकः स्मृतः ॥

इन श्लोकों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि संन्यासी को कर्म त्याग नहीं करना चाहिये ।

विद्वज्जन० पृ० १० पं० १४ ॥

एकदण्ड समाश्रित्य जीवन्ति बहवो नराः ।

नरके रौरवे घोरे कर्मत्यागात्पतन्ति ते ॥

एक दण्ड का आश्रय से बहुत से मनुष्य जीते हैं वे सब कर्म छोड़ने से रौरव नामके घोर नरकमें पड़ते हैं ।

चपेटि—निर्वन्दाश्रम मुझसे ही क्यों तुम चिड़ते हो पूर्वोक्त श्लोक को मायावादी कमलाकरभट्ट निर्णयसिन्धु का तृतीय परिच्छेद में लिखा है । तथा विद्यावारिध पं० ज्वालाप्रसादमिश्र सेतु नामका तिलकमें वैसा ही अर्थ किया है तो उन लोगोंके

लिये क्यों पत्र नहीं लिखा । तेरे ऐसे दुराग्रही को कैसे कपाय वस्त्र महात्माओं ने दिया । खैर परमहंस बनते हो इससे जड़ा परमहंसोपनिषद् के वाक्य को अवलोकन करो ॥

ज्ञानदण्डो धृतो येन एक दण्डी स उच्यते ।

काष्ठदण्डो धृतो येन सर्वाशी ज्ञान वर्जितः ।

तितिक्षा ज्ञान वैराग्य शमादिगुण वर्जितः ॥

भिक्षामात्रेण यो जीवेत्स पापी यतिवृत्तिहा ।

स याति नरकान्घोरान्महारौरवसंज्ञकान् ॥

परमहंस० ॥

इन पूर्वोक्त प्रमाणों ऐसा सावित हो गया कि एक वेणु का दण्ड संन्यासी को नहीं धारण करना चाहिये ।

विद्वज्ज०—पृ० ११ पं० ७ विचार किया जावे तो जय विजय जो सारूप्य मुक्तिमें स्थित और भगवान् के प्रत्यक्ष निकट निवासी थे सो तो राक्षस योनिको प्राप्त हुए तो औरों की क्या कही जावे ।

चपेटि०—धन्य हो निर्द्वन्द्व अपने से मूर्खता को तुमने प्रगट कर दिया यदि तुम श्रीमद्भागवत के वीर राघवीय टीका को देखा रहता तो वैकुण्ठका विषयमें भ्रम नहीं होता क्योंकि वहां पर स्पष्ट लिखा है कि वह लीला विभूतिका वैकुण्ठ है । त्रिपाद्विभूतिका नहीं । वैकुण्ठ बहुत से हैं इस विषय में त्रिपा-

द्विभूति महानारायणोपनिषद् के कुछ प्रमाणों को तुम द्वेष छोड़ कर देखो ।

तत्र मध्यमपाद मध्यप्रदेशोऽमित तेजः प्रवा-
हाकारतया नित्यवैकुण्ठं विभाति ॥ त्रिपा० अ० १

इससे एक नित्य वैकुण्ठ ज्ञात होता है । और

स एव नित्यपरिपूर्णः पादविभूति वैकुण्ठ
नारायणः ॥ त्रिपाद्वि० अ० २ ॥

इससे एक पादविभूति वैकुण्ठ ज्ञात होता है । तथा

प्रदक्षिण नमस्कारपूर्वकं ब्रह्ममय वैकुण्ठमा-
विश्य ॥ त्रिपाद्वि० अ० ५ ॥

इससे एक ब्रह्ममय वैकुण्ठ सावित होता है । और

तदनुज्ञातश्चोपर्युपरि गत्वा पञ्चवैकुण्ठान-
तीत्य ॥ त्रिपा० अ० ५ ॥

इससे पाँच ठो और भी वैकुण्ठ ज्ञात होते हैं । तथा

अनादि पाद विभूति वैकुण्ठमेव माभाति ॥
त्रिपा० अ० ६ ॥

इससे अनादिपाद विभूति वैकुण्ठ सावित होता है । और

विद्याविद्ययोः सन्धौ विष्वक्सेन वैकुण्ठपुर
माभाति ॥ त्रिपाद्वि० अ० ६ ॥

इससे विष्वक्सेन वैकुण्ठ ज्ञात होता है। तथा
विद्यामयानन्तवैकुण्ठान्परितः ॥ त्रिपा० अ० ६

इससे विद्यामयानन्त वैकुण्ठ साबित होता है। और
ब्रह्मविद्यवैकुण्ठमाविश्य ॥ त्रिपा० अ० ६ ॥

इससे ब्रह्म विद्यावैकुण्ठ ज्ञात होता है। तथा

बोधानन्द मयाननन्त वैकुण्ठानवलोक्य ॥

त्रिपा० अ ६० ॥

इससे अनन्त वैकुण्ठ साबित होता है। और

तुलसी वैकुण्ठं प्रविश्य ॥ त्रिपा० अ० ६ ॥

इससे तुलसी वैकुण्ठ ज्ञात होता है। तथा

तन्मध्ये च शुद्धबोधानन्दवैकुण्ठम् ॥ त्रिपा० अ० ६

इससे शुद्ध बोधानन्द वैकुण्ठ साबित होता है। और

ततः सुदर्शनवैकुण्ठपुरमाभाति ॥ त्रि० अ० ७

इससे सुदर्शन वैकुण्ठ ज्ञात होता है। और इसके बाद ॥

त्रिपाद्विभूतिवैकुण्ठस्थानं तदेव परम कैव-

ल्यम् ॥ त्रिपा० अ० ७ ॥

इससे त्रिपाद्विभूति वैकुण्ठ साबित होता जिसका वर्णन
यजुर्वेद में भी हैं देखो ॥

पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यमृतं
दिवि ॥ यजुर्वे० अ० ३१ मं० ३ ॥

इससे याद रखना पादविभूति वैकुण्ठ से भागवतापचार के द्वारा जय विजय राक्षस हुए हैं। मोक्षस्थान जो त्रिपाद्विभूति वैकुण्ठ है वहां से कोई भी पुनरावृत्ति को नहीं प्राप्त करता है। तुम मेरे सिद्धान्त के मोक्ष को नहीं समझे हो इससे पुनः मर्मबोधिनी सहित अर्थ पञ्चक ग्रन्थके छिहत्तर के पृष्ठ को देख लो।

विद्वज्जन वि०—पृ० ११ पं० ११ जो यह लिखा है कि संन्यासी को कर्म त्याग न करना चाहिये सो जीवकर्मसे बान्धा जाता है ब्रह्म विद्या से छुटता है इससे जो परदर्शी यति हैं वह कर्म नहीं करते हैं इस प्रमाण से इनके मुखमें धूल डाल देना चाहिये।

चपे०—निर्द्वन्द्व शिखा सूत्र रहित अर्ध यवनाकार तुमको संन्यासी के मुख में धूल डाल देनेमें कोई भी सन्देह नहीं है। इसके उत्तर में आज आर्य जाति का भारतमें शासन होता तो भङ्गी के द्वारा तेरे मुखमें वाराही विण्ठा डलवाया जाता परन्तु क्या किया जाय विधर्मि शिखा सूत्र रहितही का राज्य है इस समय में जो चाहो सो कहो। अब जड़ा विचार करो मनुष्य को अवश्य कर्म करना चाहिये ॥

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरैः ॥

ईशावास्यो० श्रु० २ ॥

इस श्रुति में स्पष्ट करने की आज्ञा है। तथा मनुमें लिखा है कि ॥

वेद संन्यासिकानां तु कर्मयोगं निबोधत ।

मनु० अ० ६ श्लो० ८६ ॥

वैदिक संन्यासियों को फल रहित कर्म ही करना चाहिये इससे—

तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः ॥

इस वाक्य का यही अर्थ करना चाहिये कि पारदर्शी यति सब काम्य कर्म नहीं करते हैं अथवा फलकी चाहना से कर्म नहीं करते हैं। अन्यथा—

तस्मादसक्तः सततं कार्यकर्मसमाचर ॥

भगवद्गी० अ० ३ श्लो० १६ ॥

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ॥२०॥

कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ।

भगवद्गी० अ० ४ श्लो० १५ ॥

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।

स संन्यासी च योगी च ॥ भगवद्गी० अ० ६ श्लो० ११

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्व कर्म फल परित्यागं प्राहु स्त्यागं विचक्षणाः ॥

भगवद्गी० अ० १८ श्लो० २ ॥

नहि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्य शेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी सत्यागीत्यभिधीयते ॥११॥
स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ॥४५॥
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं बिन्दति मानवः ॥४६॥
कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते ।
सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवा भिपद्यते ॥

श्रीमद्भाग० स्क० १० अ० २४ श्लो० १३ ॥

इन श्लोकों से विरोध पड़ेगा । इससे और

विद्यां चा विद्यां च यस्तद्वेदो भयं सह ।
अविद्यया मृत्युंतीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥

ईसावस्यो० श्रु० ११ ॥

यथा रथोऽश्वहीनस्तु यथाश्वोरथिहीनकः ।
एवं तपश्च विद्या च संयुक्तं भेषजं भवेत् ॥

हारी० अ० ७ श्लो० ६ ॥

यथान्नं मधुसंयुक्तं मधुवान्नेन संयुतम् ।

उभाभ्यामपि पक्षाभ्यां तथा खे पक्षिणागतिः ॥१०

तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ॥११॥

इन प्रमाणों से अवश्य करने योग्य कर्म ज्ञात होता है ।
इससे संन्यासी को कर्म त्याग नहीं करना चाहिये ।

विद्वज्ज०—पृ० १२ पं० १ वासना का ही क्षय होना मोक्ष है और उसी को जीवन्मुक्ति कहा है जीवन्मुक्ति वही मुक्ति है जो मरने पर मुक्ति मानते हैं वह तो श्वान और शूकर को भी है ।

चपेटि०—निर्द्वन्द्व तुम जो जीते हुए जीवन्मुक्ति माना इसमें विचार करना चाहता था कि “मुञ्चन्ति जना यस्यां सा मुक्तिः” जिसमें दुःखादिकों से जन छूट जाते हैं उसका नाम मुक्ति है । जीते हुए के तो प्रत्यक्ष में देखा जाता है कि क्षुधा के दुःख से भी नहीं छूटे हैं । इससे जीवन्मुक्ति वैदिक सिद्धान्त नहीं है इस विषयमें प्रमाणों को अवलोकन करो ।

शृण्वन् श्रोत्रं भवति स्पर्शयन् त्वग्भवति
पश्यन् चक्षुर्भवति रसयन् रसना भवति जिघ्रम्
घ्राणं भवति मन्वानो मानो भवति बोधयन्
बुद्धिर्भवति चेतयं चित्तं भवत्यहं कुर्वाणोऽहं
कारो भवति ॥ शतप० ब्रा० का० १४ ॥

मुक्ति में भौतिक शरीर या इन्द्रियों के गोलक जीवात्मा के साथ नहीं रहते किन्तु जब वह सुनना चाहता है तब श्रोत स्पर्श करना चाहता है तब त्वचा देखना चाहता है तब नेत्र स्वाद चाहता है तब रसना गन्ध चाहता है तब घ्राण संकल्प विकल्प करना चाहता है तब मन निश्चय करना चाहता है तब बुद्धि स्मरण करना चाहता है तब चित्त और अहंका करना चाहता है तब अहंकार होता है। और वेदान्तशास्त्र में लिखा है कि ॥

अभावं वादरीराहह्येवम् ॥

वेदा० अ० ४ पा० ४ सू० ११ ॥

वादरि महर्षि मुक्ति में जीव और मनका लय नहीं मानते।
और

भावं जैमिनिर्वकल्पा मननात् ॥

वेदा० अ० ४ पा० ४ सू० ११ ॥

जैमिनि महर्षि मुक्त पुरुष का मनके समान सूक्ष्म शरीर इन्द्रिय प्राण आदिको भी विद्यमान मानते हैं। तथा

द्वादशाहवदुभयविधं वादरायणोऽतः ॥

वे० अ० ४ पा० ४ सू० १२ ॥

व्यास मुनि द्वादसाह के तुल्य भाव और अभाव दोनों को मानते हैं। और गौतम महर्षि कहे हैं कि ॥

तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः ॥

न्या० अ० १ आह्नि १ सू० २२ ॥

दुख जन्म प्रभृति दोष मिथ्या ज्ञान की अत्यन्त निवृत्तिको मोक्ष कहते हैं। और छान्दोग्योपनिषद् में स्पष्ट जीवन मुक्ति का खण्डन है देखो ॥

न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययो रपहति
रस्त्यशरीरं वा वसन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः ॥
छा० अ० ८ खं० १२ मं० १ ॥

भौतिक शरीर के साथ रहता हुआ जीवात्मा के निश्चय करिके प्रिय और अप्रिय के नाश नहीं होता है तथा बिना भौतिक शरीर के रहता हुआ जीवके प्रिय और अप्रिय नहीं स्पर्श नहीं करते हैं। इससे साबित हो गया कि जीवन्मुक्ति कोई चीज नहीं है बालकों की उपलालना है।

विद्वज्जन०—पृ० १२ पं० १४ जो पारदर्शी संन्यासी हैं उनकी सन्ध्या की उपासना कैसे हो।

चपेटि०—निर्व्वन्द्व यहां पर तो खूब लिखा यदि सन्ध्या नहीं करने से पारदर्शी यति हो तब तो तुम से बढ़कर सुभर कुक्कुर गद्गहा पारदर्शी हैं क्योंकि वे तो स्नान भी नहीं करते हैं। पक्षपात को छोड़कर सन्ध्या बन्दन कर्मको करो देखो लिखा है कि ॥

अनर्हः कर्मणां विप्रः सन्ध्याहीनो यतः स्मृतः ॥
कात्या० खं० ११ श्लो० १ ॥

संध्या हीन ब्राह्मण सब कर्मों के अनर्ह होता है । यदि संध्याहीन तुम हो तो तेरा प्रणव जप में भी अधिकार नहीं है । और भी अवलोकन करो ॥

सन्ध्यायां नोपासते यस्तु ब्राह्मणो हि विशेषतः ।
सजीवन्नेव शूद्रः स्यान्मृतः श्वा चैव जायते ॥

दक्षस्मृ० अ० श्लो० २२ ॥

इस श्लोक के अनुसार अभी तुम शूद्र मरने पर कुत्ता होओगे । तथा ॥

सन्ध्याहीनोऽशुचर्नत्यमनर्हः सर्व कर्मसु ।
यदन्यत्कुरुते कर्म न तस्य फलभागभवेत् ॥

दक्ष० अ० २ श्लो० २३ ॥

इसके अनुसार श्रवण मनन निदिध्यासन तुम्हारा व्यर्थ है । इससे ।

पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रासुपासीत यथा विधि ।
गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावदादित्यदर्शनम् ॥

हारी० अ० ४ श्लो० १८

उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां सादित्यां च यथाविधि ।
गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावत्ताराणि पश्यति ॥ १९ ॥

इन श्लोकों के अनुसार पारदर्शी संन्यासोको भी सन्ध्योपासन अवश्य करना चाहिये क्योंकि लिखा है कि ॥

नियतस्थ संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।

मोहात्तस्य परित्याग स्तामसः परिकीर्तितः ॥

भगवद्गी० अ० १८ श्लो० ३ ॥

नित्य सन्ध्या वन्दनादिक कर्म का परित्याग नहीं उपपन्न होता है मोह से नित्यकर्मका परित्याग महर्षियों ने तामस कहा है। इससे सिद्ध हो गया कि पारदर्शी यति को भी सन्ध्यावन्दनादिक कर्म करना चाहिये।

विद्वज्जन०--- पृ० १३ पं० ५ ॥

सशिखं वपनं कृत्वा बहिः सूत्रं त्यजेद्बुधः ।

यदक्षरं परं ब्रह्म तत्सूत्रमिति धारयेत् ॥

येन सर्वं मिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ।

तत्सूत्रं धारयेद्योगी योगवित्तत्त्वदर्शिवान् ॥

ब्रह्मोपनिषद् में यह विस्तार से लिखा है कि जो विद्वान्यति बाहर की शिखा को त्याग कर और बाहर के सूत्र को त्याग कर जो अक्षर पर ब्रह्म में उस सूत्र को धारण करे वैसा कहा है ऐसा ही दूसरे मन्त्र का भाव समझ लो।

चपेटि--निर्द्वन्द्व तुम तो अच्छा अर्थ किया कि पूर्व परका विरोध नहीं देखा। और एक वर्ण से भी एकता नहीं उसका विषय में लिख दिया कि "ऐसा ही दूसरे मन्त्र का भाव समझ लो" क्या समझता था कि हमारे ही लकीरके फँकीर

होनेवाले इसको देखेंगे । खैर यदि पहला मन्त्र का अर्थ तेरे कथनानुसार मानलिया जाय तो ॥

सर्व एते विष्णुलिङ्गिनः शिखिनोपवीतिनः ॥

शा० मं० ११ ॥ और

शिखां न वापयेत् ॥ शाब्द्या० मं० २०

इस उपनिषद्में सब संन्यासीयों के शिखा सूत्रका वर्णन है तथा शिखाको क्षौरमें न कटावे इस प्रकार का लेख है तो इससे विरोध पड़ेगा । और ॥

वामांसदक्षकव्यन्तं ब्रह्मसूत्रं तु सव्यतः ।

अन्तर्बहिरिवात्यर्थं तत्त्वतन्तुसमन्यितम् ॥

परब्रह्मो० मं० १० ॥

नाभ्यादि ब्रह्मरन्ध्रान्तप्रमाणं धारयेत्सुधीः ।
तेभिर्धार्यं मिदंसूत्रं क्रियाङ्गं तन्तुनिर्मितम् ॥११॥

इन मन्त्रोंमें भी स्पष्ट सूत्रधारण करनेका लिखा है तो इससे भी विरोध पड़ेगा । तथा ॥

उपवीतं वटोरेकं द्वेतथेतरयोः स्मृते ।
एकमेव यतीनां स्यादिति धर्मस्य निर्णयः ॥

पारिजात० ॥

एकैकमुपवीतं तु यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।

गृहिणां चवनस्थाना सुपवीतद्वयंस्मृतम् ॥

वृद्धहा० अ० ८ श्लो० ४४ ॥

इन स्मृतियोंमें जो संन्यासीयों के एक यज्ञोपवीतका वर्णन है इससे भी विरोध पड़ेगा। इससे तुम्हारा अर्थ ठीक नहीं है। यथार्थ मंत्रार्थ यह है कि “ज्ञानी पुरुष साहंकार शिखा को काटकर पूर्वाश्रमोचित बाहरी सूत्रको त्याग करे जो अविनाशी श्रेष्ठ व्यापक सूत्र है उसको धारण करे” “सूत्रमें मणिगणों के समान जिससे यह समस्त संसार ओतप्रोत है उस सूत्रको तत्त्वदर्शी योगवेत्ता योगी पुरुष धारण करे” इन मन्त्रोंका यह तात्पर्य है कि भीतर ज्ञान मयी शिखा और बाहर केशमयी शिखा तथा भीतर पर ब्रह्ममय सूत्र और बाहर तन्तुमय सूत्रको अवश्य धारण करे। क्योंकि लिखा है कि ॥

बहिरन्तश्चोपवीती विप्रः संन्यस्तुमर्हति ।

एकयज्ञोपवीती तुनैव संन्यस्तु मर्हति ॥

परब्रह्म० मं० १४ ॥

बाहर और भीतर यज्ञोपवीत वाला ब्राह्मण संन्यासी हो सकता है लेकिन एक यज्ञोपवीत वाला संन्यासी नहीं हो सकता है। यहां पर बाहरी और भीतरी दोनों यज्ञोपवीत संन्यासी के लिये वर्णन किया गया है। जो संन्यासी बाहरी या भीतरी किसी एक चिन्हको परित्याग कर देता है वह

निश्चय करिके पतित हो जाता है क्योंकि लिखा है कि ॥

विष्णुलिङ्गं द्विधा प्रोक्तं व्यक्तमव्यक्तमेव च ।

तयो रेकमपित्यकत्वा पतत्येव न संशयः ॥

शाब्द्या० मं० ६ ॥

विष्णुलिङ्ग व्यक्त और अव्यक्त भेद से दो प्रकार कहा गया है उन दोनों में से एक किसी को भी परित्याग करने से निश्चय करिके पतित हो जाता है । इससे साबित हो गया की बाहर के लिखा और यज्ञोपवीत को भी संन्यासी कभी नहीं परित्याग कर ।

विद्वज्जन०—पृ० १३ पं० १३ ॥

तीर्थाश्रमवनारण्य गिरिपर्वत सागराः ।

सरस्वती भारती च पुरी नामानि वै दश ॥

तोथें में जो आचार्य रहा उसका संप्रदायके संन्यासी तीर्थ के नाम से हुये जिसने कुछ आश्रम बनाकर तप किया उसको संप्रदाय के आश्रम नाम के हुये गिरि गुहा में जिसने तप किया उस

की सम्प्रदाय के गिरि सब में इसी तरहके जानो ।

चपेटि०—निर्व्वन्द्वआश्रम तेरी बुद्धि को बलिहारी है कि श्रुति-स्मृति इतिहास पुराणादि से विरुद्ध जो आश्रमान्त तेरा नाम है उसको साबित करने के लिये आधुनिक साधारण किसी व्यक्ति का बनाया हुआ पूर्वोक्त श्लोक को तुमने प्रमाणतया

लिखा । जिससे ज्ञात होता है कि तीर्थ आश्रम वन अरण्य गिरि पर्वत सागर सरस्वती भारती पुरी इन दशनामों से युक्त ही संन्यासियों का नाम निश्चय करके होते हैं । और अपना पत्र का पहला श्लोकमें “शंकराचार्यम्” इस प्रकारके आचार्यान्त नाम शंकर स्वामीका लिखा है जो कि यति थे । इससे तेरा लेख प्रमत्त प्रलाप सा ज्ञात होता है । याद रखना त्रिदण्डी संन्यासियों के आचार्यान्त नाम को खण्डन करने के लिये पामर विरचित “तीर्थाश्रम” इस श्लोक को यदि तुम मानोगे तो तेरी गुरुपरम्परा में पठित गोविन्दाचार्य शंकराचार्य पद्मपादाचार्य हस्तामलकाचार्य त्रोटकाचार्य आदिक के भी आचार्यान्त नाम खण्डन हो जायगा । यदि पूर्व्वोक्त श्लोकको नहीं मानोगे तो आश्रमान्त तेरा नाम और तेरे पिठू लोगोंका नाम खण्डन हो जायगा । इससे तेरा लेख उभयतः पाशारज्जुरूप दोषसे दूषित है । तेरा तो नाम भी शास्त्रानुसार नहीं है और आचरण कहाँ से हो सकता है । और “तीर्थाश्रम” यह जो श्लोक है सो पुनरुक्ति दोष से दूषित है इससे साहित्य के दोषानभिज्ञ किसी पामर जन का बनाया हुआ है । देखो, कैसा बनाया है वन कहकर पुनः श्लोक में अरण्य कहा है जो कि ॥

अटव्यरण्यं विपिनं गहनं कामनं वनम् ॥

अमरको० कां० २ वर्ग ४ श्लो० १ ।

इस कथनानुसार वन का पर्याय वाचक शब्द अरण्य है । इससे वनके बाद अरण्य कहने से पुनरुक्ति दोषके शिवाय अन्य

कोई भी फल नहीं है। और भी अवलोकन करो श्लोकमें गिरि कहकर पुनः पर्वत कहा है जो कि ॥

महीध्रे शिखिरिक्ष्माभृदहार्य धर पर्वताः ।

अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैलशिलोच्चयाः ॥

अमरको० कां० २ वर्ग ३ श्लो० १ ॥

इस श्लोक के अनुसार गिरिका पर्यायवाचक शब्द पर्वत है। इस हेतु से गिरि के बाद पर्वत कहने से पुनरुक्ति दोष के सिवाय अन्य कोई भी प्रयोजन नहीं है। तथा थोड़ा और भी देखो कैसा श्लोक बनाया है सरस्वती कहकर पुनः भारती कहा है जो कि ॥

ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाणाणी सरस्वती ॥

अमरको० कां० १ वर्ग० ६ श्लो० १ ॥

इस कथनानुसार सरस्वती का पर्यायवाचकशब्द भारती है। इस कारण से सरस्वती के बाद भारती कहने से पुनरुक्ति दोष के सिवाय अन्य कोई भी नहीं प्रयोजन है। इससे ज्ञात हो गया कि वह श्लोक शास्त्र से विरुद्ध किसी पामर जन का बनाया हुआ है अतः श्रौत सिद्धान्त वालों को वह पूर्वोक्त श्लोक नहीं मानना चाहिये।

विद्वज्जन०—पृ० १४ पं ३ नाम से कल्याण नहीं होता है किन्तु कल्याण गुण से होता है।

चपेटि०—निर्द्वन्द्व तुमको क्या हो गया है कि विश्ववि-

ख्यात नामका खण्डन करने लगा अच्छा पटल खोल कर नाम
का विषय में देखो लिखा है कि ॥

महिमा जासु जान गण राऊ ।
प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ ॥
जानि आदि कवि नाम प्रतापू ।
भयउ शुद्ध करि उलटा जापू ॥
नाम प्रभाव जान शिव नीके ।
कालकूट फल दीन्ह अमीके ॥
साधक नाम जपहिं लवलाये ।
होहिं सिद्ध अणिमादिक पाये ॥
जपहिं नाम जन आरत भारी ।
मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ॥
नाम सप्रेम जपत अनयासा ।
भक्त होहिं मुद मंगल वासा ॥
नाम अनेक गरीव निवाजे ।
लोक वेद वर विरद विराजे ॥
नाम लेत भवसिन्धु सुखाहीं ।

करहु विचार सुजन मनमाहों ॥
 नाम प्रताप शम्भु अविनाशी ।
 साज अमंगल मंगल राशी ॥
 शुक सनकादि सिद्धि मुनि योगी ।
 नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी ॥
 नारद जानेउ नाम प्रतापू ।
 जग प्रिय हरिहर हरिप्रिय आपू ॥
 नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू ।
 भक्त शिरोमणि भे प्रह्लादू ॥

इन सब प्रमाणों से ज्ञात होता है कि नामसे हा कल्याण चेतन का होता है इससे दुराग्रह छोड़कर प्रणवानु संधान करता हुआ प्रेमके साथ

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
 हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

कलिसंतर० मं० १ ॥

इस नाम को जपो ।

विद्वज्जन०—पृ० १४ पं० १६ जो ब्राह्मण वी क्षत्रियों को दास नाम है वह किस वेद शास्त्रमें युक्त है और पूर्वमें किसी ऋषि तथा ब्राह्मण और क्षत्रियों के दास नाम हुए हैं ।

चपेटि०—निर्व्वन्द्व यह प्रश्न मुझसे क्यों किया मेरा तो ग्रन्थों में तुम देखा है कि आचार्य्यान्त नाम है। अच्छा यदि तुम पूछ दिया तो मैं उत्तर दूंगा। परन्तु तुमको क्या प्यङ्गार नेहरु सुप्रू रामओभा भा ठाकुर चौधरी सिंह राय खाँ चटर्जी वनर्जी मुकुर्जी आदिक ब्राह्मण और क्षत्रियों के नाम शास्त्रमें किसी ऋषि मुनिका मिला है नहीं नहीं। तो भी पूर्व्वोक्त नाम वालों को तुम ब्राह्मण क्षत्रिय मानते हो और समस्त व्यवहार करते हो। तैसे ही उत्कल देशमें आधा से अधिक स्मार्त ब्राह्मणों का न मालूम कब से दासान्त नाम चला आता है। जिसमें से सुप्रसिद्ध दासान्त नामवाले कतिपय ब्राह्मणों को मैं लिखता हूँ जो कि स्मार्त हैं। वर्तमान समय में नवद्वीप विद्यालय में नव्य न्याय का प्रधानाध्यापक महामहोपाध्याय चण्डीदासजी। और उत्कल प्रान्तके प्रधान मन्त्री विश्वनाथ दासजी हैं। इससे पहले देशबन्धुदासजी। तथा नीलकण्ठ-दासजी आदिक हो गये हैं। पैदल यात्रा से मुझ को ज्ञात हुआ है कि उत्कल देशमें दासान्तनामवाले ब्राह्मण अधिक हैं। और भोजराजा का समय के इतिहास देखने से ज्ञात होता है कि नवरत्न में परिगणित विश्वविख्यात कवि दासान्त नाम वाला ब्राह्मण कालिदास था। तथा भाषाके सुप्रसिद्ध कविदासान्त नामवाला तुलसीदास ब्राह्मणहीं हैं। खैर यह जो तुम पूछे हो कि ब्राह्मण क्षत्रियों के दासान्त नाम रखने के कहां पर लिखा है तो इस प्रश्न का उत्तर देखो लिख है कि ॥

नाम वैष्णव हेतुत्वं मुखमित्ये तदुच्यते ।
 योजयेन्नाम दासान्तं भगवान्नामपूर्वकम् ॥

पाराशरीयधर्म० उत्तर ख० अ० २ श्लो० ४६ ॥

इससे ज्ञात होता है कि भगवन्नामपूर्वक दासान्त नाम
 ब्राह्मणादिक का रखना चाहिये और अवलोकन करो ॥

दास्यमेव परं धर्मं दास्यमेव परंहितम् ।

दास्येनैव भवेन्मुक्तिरेन्वथा निरयं व्रजेत् ॥

वृद्धहा० अ० १ श्लो० १८ ॥

विष्णोर्दास्यं परोभक्ति येषां तु न भवेत्कचित् ।

तेषां मेव हि संसृष्टं निरयं ब्रह्मणा नृप ॥ १९ ॥

नारायणस्य दासा येन भवन्ति नराधमा ।

जीवन्त एव चाण्डाला भविष्यन्ति न संशयः ॥ २० ॥

इन श्लोकों के अनुसार नारायण की दासता को जानने के
 लिये सब वर्ण का दासान्त ही नाम होना चाहिये । क्योंकि
 लिखा है कि

नृसिंह राम कृष्णाख्यं दास नाम प्रकल्पयेत् ॥

वृद्धहा० अ० ३ श्लो० ४ ॥

इससे दासान्तही नाम सिद्ध होता है । और

दासभूतमिदं तस्य ब्रह्माद्यं सकलं जगत् ॥

पद्मपु० उत्तरख० ६ अ० २२६ श्लो० ६२ ॥

ब्रह्मादिक सब संसार नारायण का दास है। दास केवल शूद्र को ही नहीं कहते हैं कि दासान्त नाम का विषय में तुम प्रश्न किये हो भृत्य को भी कहते हैं क्योंकि अमरकोश में लिखा है कि—

भृत्ये दासेय दाशेय दासेर दास गोप्यक चेटकाः ।

नियोज्य किंकर प्रैष्य भुजिष्य परिचारकाः ॥

अमर को० कां० २ वर्ग १० श्लो० १७ ॥

इससे भृत्यवाचक दास शब्द साबित हो गया। और भी लिखा है कि ॥

दासो भृत्ये च शूद्रे च ज्ञानेऽर्थिनि च धीवरे ॥

इस कोश से और ।

दासः सेवक शूद्रयोः ॥

इस प्रमाण से सेवकवाचक दास शब्द यहां पर है। श्रीमन्नारायण के सब दास हैं। वेदान्त सूत्र में लिखा है कि ॥

दासकितवादित्वमधीयत एके ॥

वेदा० अ० २ पा० ३ सू० ४३ ॥

और ब्रह्मसूक्त में लिखा है कि—

ब्रह्मदाशा ब्रह्मदासा ब्रह्मैवेमे कितवाः ॥

ब्रह्म सू० ॥

और भी लिखा है कि—

यस्यायं विश्व आयौ दासः ॥

यजुर्वे० अ० ३३ मं० ८२ ॥

इन प्रमाणों से स्पष्ट दासान्त नाम ज्ञात होता है । तथा वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि—

दासोहं कौसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥

वा० रा० सु० ५ सर्ग० ४३ श्लो० ६ ॥

इस मारुति का वाक्य से ज्ञात होता है कि हनूमान् राम-दास है ।

अहमष्मि नारायणदासदासः ॥

पाण्डवगी० श्लो० २० ॥

इससे साबित होता है कि अक्रूर नारायणदास दास हैं । इन प्रमाणों से स्पष्ट साबित होता है कि ब्राह्मणादिक का दासान्त नाम होना चाहिये ।

विद्वज्जन०—पृ० १५ पं० १ इन्होंने ने जितना लेख लिखा है वह श्रीभगवान् यगद्गुरु शंकराचार्य के ही ऊपर घोर कुठाराघात किया है और उन्हीं का खण्डन लिखा है ।

चपेटि०—निर्व्वन्द्व सज्जन लोग विचार करेंगे तो ज्ञात हो जायगा कि तुम्ही शंकराचार्यजी के ऊपर कुठाराघात किया है। द्वेष छोड़ कर विचार करो कि तुम अपना आश्रमान्त नामको सावित करने के लिये लिख दिया कि तीर्थ आश्रम वन अरण्य गिरि पर्वत सागर सरस्वती भारती, पुरी इननामों में से कोई एक जिसके नामान्त में रहता है वही संन्यासी है। तो ये निर्लज्ज आचार्यान्त नाम होनेसे शंकराचार्यजीको तुम संन्यासी से बाहर कर दिया। क्या यह उनके ऊपर घोर कुठाराघात नहीं है। इतनाहीं नहीं शंकराचार्य स्वामो ॥

भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥

इस वाक्य से गोविन्द को भजन करने का उपदेश दिये हैं। तुम अपने को गोविन्द मानकर पूर्वोक्त वाक्य को तिला-ञ्जलि दिये हो। और ॥

गेयं गीतानामसहस्रं ध्येयं श्रीपतिरूप मजस्त्रम् ॥

इस वाक्य से गेय गीता और सहस्र नाम हैं तथा ध्येय नारायण का रूप सर्वदा है इस प्रकार के उपदेश दिये हैं। तुम अपना मनसे शिवमहिम्न को गेय बना लिया और निर्विशेष चिन्मात्र ब्रह्म अपनेको ध्येय बना लिया तो क्या शंकराचार्य की खण्डन नहीं है। तथा शंकराचार्यजी उपदेश दिये हैं कि—

वादः परित्यज्यताम् ॥

तो इससे विरुद्ध तुम विद्वज्जन विचार पत्र को वाद के

लिये बना दिया । इससे शंकराचार्यजी के उपर घोर कुठारा-
घात करनेवाला तुमसे अन्य कोई भी नहीं है

विद्वज्जनविचार पत्र के सोलहवां और सत्रहवां तथा अठा-
रहवां और उनईसवां विसवां तथा इकईसवां पृष्ठ का उत्तर
वार्त्ता मालाकी चूड़ामणि टीका में मैं लिख दिया हूं । देखना
उस उत्तर को देखकर बेहोश नहीं हो जाना ।

विद्वज्जनवि०—पृ० २२ पं० ६ ॥

प्रभुजलनिधि बीचि हूं, तुम रविशशि मैं कान्ति ।
हरि विभावसु मैं तेजहूं, कहां द्वैतकी भ्रान्ति ॥
प्रभुपानी मैं बर्फ हूं, हरि भृङ्गी मैं कीट ।
भेद हमारा है नहीं, ज्यों मृतिका अरु ईंट ॥
ऐसी भक्ति के किये, कहा कहौ है हानि ।

चपेटि०—निर्द्वन्द्व तुम अपनी अनभिज्ञता का भक्ति विषय
में परिचय दे दिया । भला तुमको विचार करना चाहता था
कि भज सेवायां धातु से क्तिन् प्रत्यय होकर भक्ति शब्द बनता
है । तो मृतिका और ईंट के समान कैसे तुम ने अपना कपोल
कल्पित बातको लिख दिया । अब धर्मशास्त्र के वाक्यको
अवलोकन करो ॥

शङ्खचक्रोर्ध्वपुंड्रादि धारणं स्मरणं हरेः ।

तन्नामकीर्तनं चैव तत्पादाब्जनिषेवणम् ॥

वृद्धहा० अ० ८ श्लो० ८१ ॥

तत्पादबन्दनं चैव तन्निवेदित भोजनम् ।

एकादश्युपवासश्च तुलस्यैवार्चनं हरेः ॥ ८२ ॥

तदीयानां मर्चनं च भक्तिर्नव विधांस्मृता ॥ ८३ ॥

शंखचक्र ऊर्ध्व पुंड्र आदिका धारण करना । १ तथा हरिका स्मरण करना २ और हरिनाम संकीर्तन करना ३ तथा श्रीहरि के चरणोदक को सेवन करना ४ और श्रीहरिके चरणारविन्दों की बन्दना करना ५ तथा श्रीहरि के भोग लगाया हुआ भोजन करना ६ और एकादशी के उपवास करना ७ तथा तुलसी से ही श्री हरिकी पूजा करना ८ और भागवतों की पूजा करना ९ यह नव प्रकार की भक्ति कही गई है । और देखो क्या लिखा है कि—

श्रवणं संकीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्

अर्चनं बन्दनं दास्यं सख्य मात्मनिवेदनम् ॥

श्रीमद्भा० स्क० ७अ० ५ श्लो० २३ ॥

श्रवण नाम संकीर्तन श्रीविष्णुस्मरण पादसेवन अर्चन बन्दन दासता सख्य और आत्मनिवेदन यह नव प्रकारकी भक्ति है । और पद्मपुराण में १६ प्रकारकी भक्ति कही गई है । तिस को तुम देखो ॥

आद्यं तु वैष्णवं प्रोक्तं शङ्खचक्राङ्कनं हरेः ।

धारणं चोर्ध्व पुण्ड्राणां तन्मन्त्राणां परिग्रहः ।

पद्मपु० उत्तरखं० ६ अ० २२४ श्लो० २३ ॥

कीर्तनं श्रवणं चैव वन्दनं पाद सेवनम् ।

तत्पादोद्वक सेवा च तन्निवेदित भोजनम् ॥२४॥

तदीयानां च सेवा च द्वादशी व्रतनिष्ठितम् ।

तुलसीरोपणं विष्णोर्देव देवस्य शार्ङ्गिणः ॥२५॥

भक्तिः षोडशधा प्रोक्ता भवयन्धवमुक्तये ॥२६॥

पहले वैष्णव होना १ तथा शंख चक्र धारण करना २ और ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करना ३ तथा चकार से भगवन्नामपूर्वक दासान्तनाम रखवाना ४ और मूल मन्त्रादिक को ग्रहण करना ५ नाम संकीर्तन करना ६ और भगवच्चरित्रको सुनना ७ तथा चकार से दिव्य मंगल विग्रह को चिन्तवन करना ८ और श्रीहरिकी स्तुति करना ९ तथा श्रीपाद सेवन करना १० और श्रीहरि के चरणोदक को सेवन करना ११ तथा विष्णुका भोग लगाया हुआ भोजन करना १२ और चकार से आत्म निवेदन करना १३ और भागवतों की सेवा करना १४ तथा द्वादशी व्रतमें निष्ठा रखना १५ और तुलसी रोपना १६ देवों के देव शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले श्रीविष्णु भगवान् की सोलह

प्रकारका यह भक्ति संसारके बन्धनको छुड़ानेके लिये हैं । अब जड़ा सावधान होकर भाषा का भी प्रमाण देख लो ।

नवधा भक्ति कहौं तोहिं पाहीं ।
 सावधान सुनु धरु मनमाहीं ॥
 प्रथम भक्ति सन्तन कर संगी ।
 दूसरि रति मम कथा प्रसंगी ॥
 गुरूपद पंकज सेवा तीसरि भक्ति अमान ।
 चौथिभक्तिममगुणगण, करै कपट तजि गान ॥
 मन्त्र जाप मम दृढ़ विश्वासा ।
 पंचम भजन सो वेद प्रकाशा ॥
 षट दमशील विरत बहुकर्मा ।
 निरत निरन्तर सज्जन धर्मा ॥
 सतईं सब मोहिं मय जग देखै ।
 मोते सन्त अधिक कर लेखै ॥
 अठईं यथा लाभ सन्तोषा ।
 स्वप्नेहुं नहिं देखै पर दोषा ॥
 नवम सरल सबसों छलहीना ।

मम भरोश हिय हर्ष न दीना ॥

इन पूर्वोक्त प्रमाणों से साबित हो गया की तेरी लिखी हुई भक्ति धर्म शास्त्रादि ग्रन्थों से विरुद्ध है ।

विद्वज्जनवि०—पृ० २२ पं० १६ ॥

यावान्नस्यु स्त्रयो दण्डा स्तावदेकेन वर्तयेत् ॥

मेधातिथि का वाक्य है कि जब तक त्रिदण्ड न प्राप्त हो तब तक एक ही दण्ड रखे । अब इस पर विचार करो कि क्या वेणु दण्डों के वास्ते कहा हैं या कार्याक वाचिक मानसिक दण्डों के वास्ते कहा है ।

चपेटि०—निर्व्वन्द्व तुम्हारा खण्डन प्रकार भी सबसे विलक्षणहीं हैं क्योंकि भक्ति पर जाकर फिर प्रमत्तके समान त्रिदण्ड पर चला आया । खैर पूर्वोक्त मेधा तिथि का वाक्य प्रकरण देखने से बाह्य लिंग का ही बोधक है । इससे तीन वेणु का ही दण्डों के वास्ते कहा है । क्योंकि यदि पूर्वोक्त वाक्यमें कार्याक वाचिक मानसिक दण्डों को अर्थ करोगे तो उसके साहचर्य से एक दण्ड का भी ज्ञान दण्ड यह अर्थ हो जायेगा तो “जब तक त्रिदण्ड न प्राप्त हो तब तक ही एक दण्ड रखे” इस अर्थानुसार ज्ञान दण्ड को कैसे परित्याग करोगे । इससे पूर्वोक्त मेधातिथि का वाक्य में वेणु दण्डों को ही अर्थ पड़ेगा । याद रखना तीन दण्ड सर्वदा पासमें रखना यह रागतः प्राप्त नहीं है इससे शास्त्र विधान किया है क्योंकि लिखा है कि—

अप्रतेशास्त्रमर्थवत् ॥

इससे सिद्ध हो गया कि त्रिदण्डका शास्त्रमें विधान हैं। और चार प्रकार के जो संन्यासी हैं वे सभी त्रिदण्डीही हैं यह पहले साबित कर चुका हूँ। इससे और ॥

त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते ॥

लिखित स्मृ० श्लो० २२ ॥

इस श्लोकमें प्रेतत्वा भाववर्णन न होनेसे ब्राह्मण को अवश्य त्रिदण्डही धारण करना चाहिये।

विद्वज्ज०—पृ० २४ पं० १८ ॥

दण्डात्मनोस्तु संयोगः सर्वदैव विधीयदे ।

न दण्डेन विना गच्छे दिषुक्षेपत्रयं बुधः ॥

यमदग्नि स्मृतिमें लिखा है कि त्रिदण्ड और देहका संयोग सर्वदा विधान है ज्ञानी तीन इषुक्षेपसे अधिक विना त्रिदण्ड के न चले। मूलमें तो केवल दण्ड पाठ है और अर्थ में त्रिदण्ड लिखा है।

चपेटि०—निर्द्वन्द्व “दण्डात्मनो” यह श्लोक “सर्वदैव” के स्थान पर “सर्वथातु” इस प्रकार के पाठ भेद करिके संन्यासोपनिषद् का ग्यारहवां मंत्र में भी है। भला तुमको विचार करना चाहता था कि सर्वत्र मूल पाठका अनुसार ही क्या अर्थ होता है। नहीं तो जैसे ॥

गङ्गायां द्योषः ॥ मञ्चा आक्रो शन्ति ॥

काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम् ॥

इत्यादिक स्थलोंमें मूल पाठसे विलक्षण अर्थ होता है।
तैसेही “दण्डतमनोः” इस मूल पाठ में दण्ड पाठ है तै भी
उसका अर्थ त्रिदण्ड करना हीं समुचित है क्योंकि पहले
निश्चय हो चुका है कि ॥

चतुर्था भिक्षवः प्रोक्ताः सर्वे चैव त्रिदण्डनः ॥

चार प्रकार के जो संन्यासी हैं वे सभी त्रिदण्ड ही हैं।
इस प्रकार के निश्चय होने पर जहां जहां संन्यासी का विषय
में दण्ड शब्द आवेगा वहां वहां विचार शील पुरुष त्रिदण्डही
अर्थ करेगा। इससे मूल में दण्ड पाठ है तौ भी शास्त्रीय
सिद्धान्तानुसार त्रिदण्ड में अर्थ किय हूं। कुछ रोज अध्ययन
करो तब शास्त्र कामर्म ज्ञात होगा गाल बजाने से नहीं।

विद्वज्जन०—पृ० २५ पं० ४ संन्यासी अग्नि न छुए क्रोध
न करे द्रव्य आदिका संग्रह न करे स्त्री को पास न आने दे
प्रतिमा की भी स्त्री न देखे इसी प्रकार बहुत कुछ लिखा है।

चपेटि०—निर्व्वन्द्वश्रम पूर्वोक्त मेरा लेख क्या माघमें गुण
चूप अग्नि तापने में और काषायवस्त्र धारिणी स्त्रीयों से
चरण सेवा कराने में तथा कमण्डलु तथा तीर्थ का व्याजसे
द्रव्य संग्रह करने में बाधक ज्ञात होता है कि मेरे ऊपर रंज
हो गया। क्यों रंज होते हो खूब मज़ा लो क्या जनाव मैं

रोकने आता हूँ । मैं अपने तरफ से एक वर्ण भी नहीं लिखा हूँ उपनिषदों के मंत्रों को भाषा में अनुवाद मात्र किया हूँ इसको द्वेष छोड़कर तुम देखो ॥

लौकिकाग्नी नुदराग्नौ समारोपयेत् ॥

आरुणि को० मं० २ ॥

काम क्रोध हर्षरोष लोभ मोह दम्भ दर्प-
च्छा सूया ममत्वाहंकारादीनपि परित्यजेत् ॥

आ० मं० ४ ॥

इन मंत्रों से ज्ञात होता है कि अग्नि न छुए और क्रोध को परित्याग करे ॥

कामः क्रोधस्तथा दर्पो लोभ मोहादयश्च ये ।
तांस्तु दोषान्परित्यज्य परिव्राणिर्ममो भवेत् ॥

नारदप० उपदे० ३ मं० ३३ ॥

राग द्वेषवियुक्तात्मा समलोष्टाश्म काञ्चनः ।
प्राणिहिंसा निवृत्तश्च मुनिः स्यात्सर्वनिः
स्पृहः ॥ ३४ ॥

सुवर्णादीन् परिग्रहेत् ॥ मं० ८६ ॥

न संभाषेत्त्रियं काञ्चित्पूर्वं दृष्टां न स्मरेत् ।

कथाञ्च वर्जयेत्तासां न पश्येह्लिखितामपि ॥

नारद० उपदे० ४ मं० ३ ॥

एतच्चतुष्टयं मोहात्स्त्रीणामाचरतो यतेः ।

चित्तं विक्रीयतेऽवश्यं तद्विकारात्प्रणश्यति ॥४॥

त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमज्जामेदोस्थि संहतौ ।

विण्मूत्रपूये रमतां क्रिमीणां कियदन्तरम् ॥२६॥

क सरीर मशेषाणां श्लेष्मादीनां महाचयः ।

क चाङ्गसोभा सौभाग्यकमनीयादयो गुणाः ॥२७॥

मासांसृक्पूयविण्मूत्रस्नायुमज्जास्थि संहतौ ।

देहे चेत्प्रीति मान्मूढो भविता नरकेऽपि सः ॥२८॥

स्त्रीणामवाच्यदेशस्य किलन्न नाङ्गी व्रणस्य च ।

अभेदेऽपि मनोभेदाज्जनः प्रायेण वञ्च्यते ॥२९॥

चर्मखण्डं द्विधा भिन्नमपानोद्गारधूपितम् ।

ये रमन्ति नमस्तेभ्यः साहसं किमतः परम् ॥३०॥

माद्यति प्रमदां दृष्ट्वा सुरां पीत्वा च माद्यति ।

तस्माद्दृष्टि विषां नारीं दूरतः परिवर्जयेत् ।

नार० उपदे० ६ मं० ३१ ॥

सम्भाषणं सह स्त्रीभिरालापः प्रेक्षणं तथा ।
नृत्तं गानं सहासं च परिवादांश्च वर्जयेत् ॥३२॥

और भी लिखा है कि ॥

सुजीर्णोऽपि सुजीर्णासु विद्वांस्त्रीषु न विश्वसेत्
सुजीर्णास्वपि कन्था सुसज्जते जीर्णमम्बरम् ॥

संन्यासो० मं० ६० ॥

प्रपञ्चमखिलं यस्तु ज्ञानाग्नौ जुहुयाद्यतिः ।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य सोऽग्निहोत्री महायतिः ॥

इन पूर्वोक्त उपनिषदों के वाक्यों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि संन्यासी वह्न्याग्नि न छुए क्रोध न करे द्रव्य आदिक का संग्रह न करे स्त्री को पास न जाने दे स्त्री की प्रतिमा को भी न देखे। तो न मालूम तेरा वक्षःस्थल क्यों फटता है।

विद्वज्ज०—पृ० २५ पं० ६ भृगुक्षेत्र के पास नगवा में १५ दिवस इनके पास रह कर देखा है कि क्रोध की तो मूर्ति ही है जिससे कुछ अर्थ हो उसको छोड़ औरको तो भस्म ही कर डालने की इच्छा रहती है।

चपेटि०—निर्व्वन्द्व मूढ़ मुण्डाने पर भी झूठ बोलना तुम नहीं छोड़ा। क्या भगवद्गीता का उपदेश समय में हजारों मनुष्यों की भीड़ तुम अपने नेत्रों से नहीं देखा था। फिर

तुमको विचार करना चाहता था कि इस कराल समय में धार्मिक उपदेश श्रवण करने के लिये इतनी जनता क्रोध मूर्ति के पास कब आ सकती है। और यह भी तुमको विचार करना चाहता था कि 'तुम से मुझको क्या अर्थ था कि पर्णशाला चौकी दातून भिक्षा दूध फल आदिक का नित्य प्रति जनता से कहकर पन्द्रह दिवस पर्यन्त अच्छि प्रकार से प्रबन्ध करवाया था। तथा चलने समय में पांच गजका वस्त्र काषाय में रंगवाकर पं० वागीश्वर पाठक जी से दिलवाया था तो क्या तेरे सिद्धान्त में भस्म कर डालने की इच्छा यही कहाती है। खैर तेरे सामने नगवामें जो काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् व्या० आचा० पं० रामभवोनो-पाध्यायजी तथा वेदा० आ० दाक्षिणात्य पं० नृसिंहाचार्य जी और व्या० आ० पं० रघुनाथ शास्त्री जी तथा व्या० आ० पं० सभापत्युपाध्याय जी और महामहोपदे० पं० गङ्गाविष्णु शास्त्री जी तथा अग्नि होत्री कर्म० पं० वायुनन्दनशास्त्री जी और सङ्गीताचार्य पं० शिवप्रसाद त्रिपाठीजो आदिक उपस्थित थे उन महानुभावोंको निर्णायक तुम और मैं भी स्वीकार करलूँ। यदि वे लोग मुझको क्रोध मूर्ति कह देंगे तब सब जनता मानलेगी की त्रिदण्डी क्रोधमूर्ति हैं। नहीं तो संन्यासी का धर्म से विरुद्ध जो तुमने भगड़ा लगाया इससे ॥

पारिव्राज्यं गृहीत्वा तु यःस्वधर्मं न तष्ठति ।

इपदेनांकयित्वा तु राजा शीघ्रं प्रवासयेत् ॥

दक्षस्मृ० अ० ७ श्लो० ३५ ॥

इस श्लोक के देखानुसार कुत्ते के पैर का दाग देकर तुमको निकाल देना चाहिये। भला कितना कृतघ्न तुम हो कि नगवा जड़ारी भँड़सर अखार शिवरामपुर जमुवा आदिक पास के ग्राम में रहने वाले मनुष्यों से विना पूछे हुये जो पन्द्रह रोज सब जनता के समक्ष मुझसे श्रीमद्भाग-

वद्गीतामृत को पानकर मेरे ऊपर घोर कुठाराघात किया। यह ठीक है कि “दुष्ट संग जनि देहु विधाता” नहीं तो इस श्री जगन्नाथपुरी में यह लेख लिखने का मुझ को अवर नहीं प्राप्त होता।

विद्वज्जन०—पृ० २५ पं० ६ और यह भी सुना था कि अमुक ने ४००) रुपया त्रिदण्डी को दिया किसीने २००) किसी ने १५०) ऐसा बहुत से सुना।

चपेटि०—निर्द्वन्द्व जब तुमको पत्र लिखना था तौ अच्छी प्रकार से जांच क्यों नहीं लिया कि सुना हुआ बात लिख दिया भला किससे तुम सुना था उसका नाम क्यों नहीं लिख दिया। नहीं लिखने से ज्ञात होता है कि अपने मनसे गढ़कर तुम लिखा है कि “रुपया त्रिदण्डी को दिया” भला तुम भी तो विचार करो कि जो धर्म के लिये चार सौ रुपया देगा वह धर्मात्मा कम से कम त्रिदण्डी स्वामी जी ऐसा शब्द कहेगा।

इससे मालूम होता है कि तुम अपने मनसे लिख दिया है कि रुपया त्रिदण्डी को दिया । सब समाचार पत्रों से यह विदित है कि त्रिदण्डी स्वामीजी की उपस्थिति में नगवां महानारायण यज्ञ हुआ है । जिसका यजमान उसी ग्रामका निवासी भलका नन्द ब्रह्मचारी थे । और कोशाध्यक्ष पं० कपिलदेवोपाध्याय जी थे इससे जो रुपया लाता था वह उन्हीं को दे दिया करता था । उनके कहीं चले जानेपर पं० गायामिश्रजी को जो रुपया लाता था वह दे देता था । फिर झूठा मुक्तको क्यों लिखा । इसका कारण यही ज्ञात होता है कि महानारायण यज्ञ का वैभव तुमको सहन नहीं हुआ । अतः उस यज्ञ में सम्मिलित बलिया और शाहाबाद जिला कि जनता का तथा मेरा निन्दात्मक पत्र छपवा करके तुमने बटवाया । खैर निन्दा लिखने के लिये तेरी लेखनी चली । और जो धर्मात्मा यज्ञमें चार सौ रुपया दिया उसका नाम लिखने के समय कुण्ठन हो गई । अच्छा कतिपय दानशीलोंके नाम और उस यज्ञमें दिया हुआ रुपया को मैं यहां पर लिखता हूं तुम अवलोकन करो । पं० रामकिशोर पाठक चारसौ । पं० हरिहर पाठक तीन सौ । और पं० मुक्तिनाथ पाण्डेय दो सौ । तथा पं० रामअसीस पाठक दो सौ । और पं० मुखलाल पा० दो सौ । पं० रामबीजपाण्डेय डेढ़ सौ । देवदत्त पाण्डे० एकसौ । अखार के बाबा एकसौ । पं० रामदास पाठक चारसौ । गनपति त्रिपा० तीनसौ । मरु-द्रगिरि तीन सौ । बाबू रामगोविन्द सिंह एक सौ । बलिया-

चेरमैन वाबू० सीताराम रईस अग्रवा० सात सौ रुपया दिये ।
और बहुत मनुष्य उसमें सहयोग दिये थे परन्तु नाम याद न
होने से मैं यहां पर लिख नहीं सकता हूं । तुमको जीतना
बने उतना पत्र निकाला करो इधर से उसका उत्तर छपवाने के
लिये भक्त जन तैयार हैं तेरा कुछ दाल नहीं गलेगा ।

विद्वज्ज०—पृ० २५ पं० १२ चारो ओरकी स्त्रियों को
बुलाकर खूब रुपया पूजाया ।

चपेटि०—निर्द्वन्द्व नगवा के चारो ओरकी स्त्रियां क्या
मेरे वश थीं कि बुलानेसे सब स्त्रियां चली आईं । और
क्या सब ग्रामो में घर घर बुलाने के लिये तुम्ही तो नहीं
गया था कि सब ज्ञात होगया । छी छी तुरे को सरा
सर असत्य लेख लिखना चाहिये । सच्चा बात तो यह है
कि चार मास जब अपने आश्रम के पास स्त्रियों को मैं
नहीं आने दिया तब नगवा के पास का विद्वानोंने प्रार्थना
किया कि स्वामीजी महाराज हम सबों कि अर्धाङ्गिनी जो
स्त्रियां हैं सो श्री चरणों के दर्शन नहीं किये । और
दर्शन करने के लिये उन सबों में हम सबोंसे अधिक उत्कण्ठा
है इससे उन भक्ताओं के लिये भी एक दिन दर्शन
करने का अडर अवश्य मिलना चाहिये । इस प्रकार के
बहुत प्रार्थना करने पर

अद्यजातां यथा नारीं तथा षोडशवार्षिकीम् ।

शतवर्षां च यो दृष्ट्वा निर्विकारः स षण्डकः ॥

नारदप० उपदे० ३ मं० ६४ ॥

इस मन्त्र को और शंकराचार्य स्वामीजी से तथा मण्डन मिश्रजी से शास्त्रार्थ होने के समय में मण्डन मिश्र की भार्या के सभापतित्व पदको और श्रीभाष्यकार का विषय में चेलाञ्जलाम्बा से किया हुआ आतिथ्य को अनुसन्धान कर मैंने कहा कि अच्छा यज्ञकी पूर्णाहुति हो जानेपर प्रतिपदा के दिनमें पवित्रता से आकर दर्शन कर सकती हैं। वश यह आवाज चार क्रोश चारो तरफ तुरन्त पहुंच गया। और निर्धारित समय पर कुलाङ्गनायें अपना पुत्र या देवर आदिक को साथ लेकर उपायनके साथ यज्ञशालाका और मेरा दर्शन किये। और मोदक यज्ञशिष्ट लेकर चले गये। बात तो यह है जो कि सब जनता जानती है। इससे विरुद्ध झूठा लेख तुम क्यों लिखा क्या स्त्रियों का उपाय न देखकर तेरे से सहन नहीं हुआ। भला तुमको विचार करना चाहता था कि सब विद्वानों के कहने से भक्ताकुलाङ्गनाओं के लिये एकदिन दर्शन का मैं मोका दे दिया था तो इस विषयमें पत्र लिखने का क्या काम था। धन्य तेरा पक्षपात है कि गर्भपात कराके व्यभिचारिणी स्त्रियों को कषाय वस्त्र धारिणी बनाकर जो लोग स्पष्ट काशी में रखे हैं व्यभिचार करने के लिये उनलोगों के लिये तुमने एक पत्र नहीं लिखा। और जिसका सदाचार प्रायः गङ्गातट वासी सभी लोग जानते हैं उस त्रिदण्डी की निन्दा करने के

लिये तुम कटिवद्ध तैयार हुआ तथा एक ओन्तिस पत्र का पुस्तक ही लिख दिया। खैर तुम मेरे विषय में स्त्रियों के दर्शन का आक्षेप लिखा करो। और रङ्गिली छविली तरुणी विधवा ब्राह्मणी के अन्तर्गृह में अकेला जाकर मध्याह्न में मन्द मन्द मुसुकाते हुए लुचुई और कटहर के कोआ खूब मजा के साथ गचागच पाया करौ।

विद्वज्जन०—पृ० २५ पं० १३ सुना कि ७५०) यज्ञ से बचाकर त्रिदण्डीने यहां जमा किया है।

चपेटि०— नारायण नारायण ओह निर्व्वन्द्व तुम कौन है कि इतना झूठ सरासर लिख दिया। अरे मूर्ख नगावाके प्रसिद्ध आम पबलिक से पूछ क्यों नहीं लिया। भला विचार करो द्वितीया के दो बजे रात्रि में कईक हजार ब्राह्मण भोजन होने के बाद यज्ञ के कार्य कर्त्ताओं कि निद्रा पहली ज्यों आई त्योंही बिना कुछ कहे हुये यज्ञशाला से मैं चल दिया। और अकेला त्रिदण्ड कमण्डलु आदिक को लिया हुआ गंगाके तट पर पहुंचा। तब वहां जवनीयां निवासी पं० रामचीजपाण्डेय मास्टर मुझको पहचान कर साष्टाङ्ग किये और कहें कि स्वामीनाथदास का ग्राम मैं पधारा जाय सौदागर वीनडोंगी लाया है। वस तब तक तो मैं कहा की अच्छा बहुत शिघ्र तासे नौका को खोलवाईये नहीं तो कोई देख लेगा तो अभी जाना नहीं होगा। यज्ञ का वस्तु बहुत अभी बँचाहुआ है इससे जनता रोकेगी। इस बातको

सुनते ही नौका को खोले और जोर से खेकर थोड़ा दिन चढ़ते चढ़ते पवन कि सहायता से अपना ग्राम का पास में मुझको लेगये । और तब से आज तक मैं नगवामें गया नहीं फिर ७५०) रुपया कैसे जमा किया । तथा नगवामें किसके पास मैं रुपया जमा किया उसका नाम तुम क्यों नहीं लिखा । पत्रोत्तर मिलने पर तुम्हारा पोल खुल जायगा । सच्ची तो यह है कि जिस दिन स्त्रियों को दर्शन करने के लिये मोका दिया गया था । उस दिन पहले से प्रबन्ध सब ऊग्रसेनपुर निवासी पं० गयामिश्रजी के जिमा पुरोग्राम के अनुसार सौंप दिया गया था । इससे पूर्वोक्तमिश्रजी उस दिन का सब प्रबन्ध करते हुये जो स्त्रियां पूजा यज्ञशालामें रखती थीं उसको मोनीब से लिखवाकर अपने पास में रख लेते थे । सम्भव है कि वही स्त्रियोंकी पूजा सात सौ पचास हो । वह रुपया उस समय मिश्रजी के पास रह गया फिर मुझसे पूछकर “वार्त्तामाला” पुस्तक को छपाने के लिये काशीलक्ष्मी-नारायण प्रेसमें उन्होंने संपूर्ण रुपया दे दिया जिसका पक्का रसीद उनके पास वर्तमान है जिसका दिल चाहे वह देख सकता है । तुम याद रखना मैं श्रीदेवीका पुत्र हूँ इससे मेरे लिये जहां जाता हूँ वहां ही रुपया जमा रहती है । तो यज्ञसे बचाकर रुपया क्यों जमा करूंगा । यहां पर आकर देख लो परमार्थ के लिये भराभर द्रव्य आ रहा है ।

विद्वज्जन०—पृ० २५ प० १४ वहोरनपुर आदि कई जगह सुना है कि त्रिदण्डी का कई हजार रुपया जमा है।

चपेटि०—निर्द्वन्द्व वहोरनपुर के सुप्रतिष्ठित रईस मालिक बाबू गंगादयालुराय मा० बा० देवप्रसादराय राजानराय राम-प्रसादराय लघनराय रामदीलीपराय दत्तात्रेयराय रामयश-राय आदिक से तुमने पूछा है कि त्रिदण्डी आप लोगों के यहां रुपया जमा किया है। नहीं तो फिर से जाकर पारस-लालजी से पूछ लो झूठा कोलाहल क्यों मचाते हो। वहोरनपुर का यज्ञ में जो वचा था वह द्रव्य धार्मिक कार्यों में व्यय हो गया। और कहां कहां पर जमा रुपया है उसको स्पष्ट लिख क्यों नहीं दिया। उसका भी उत्तर हो जाता खैर दूसरा पत्र में लिखने के लिये रक्खे होवोगे तो ईधर भी पत्रोत्तर देने में देर नहीं किया जायगा। पहले काषायबस्त्र का सम्बन्ध से सिनहा निवासी महावीर भक्त हजाम के द्वारा छपरा जिला में जो बड़ा लम्बा चौड़ा तुमने पत्र भेजा उसका उत्तर मैं नहीं दिया। परन्तु बाहर उन प्रान्तों से चले आने पर उसी पत्र को छपवाकर बटवा दिया। इससे अब पत्रोत्तर देने में विलम्ब नहीं होगा। याद सब रहे कि जीतने भगव-द्भक्त हैं सब मेरे बन्धू हैं इस लिये उन लोगों का जो जमा रुपया है सो सब रुपया मेरा ही है। तुमको तो दिन भर मागने पर श्रुधा निवृत्ति मात्र भी बहुत क्लेश से अन्न प्राप्त होता है।

विद्वज्ज०—पृ० २५ पं० १५ कलकत्ता में बहुतो ने देखा कि एक दण्डी के पास धूनी लगी और खाने पीनेका सामान भी बना ले ।

.. चपेटि०—निर्व्वन्द्व यह सब लोग जानते हैं कि श्री सम्प्रदाय के ब्रह्मचारी भी धूनी नहीं लगाते हैं तो त्रिदण्डी संन्यासी कैसे लगा सकते हैं । इससे सरासर झूठा तुम लिखा । कलकत्ता जगन्नाथ घाटपर श्री बलदेवजी का सुन्दर मन्दिर है । जिसमें श्रेष्ठ ब्राह्मण पूजा और रसोई करनेवाले हैं । वहां का नियम है कि कितनो त्रिदण्डी स्वामी सब पधारें किसी को कभी भी जाने के लिये जवाब नहीं देना । प्रेमसे नित्य प्रति भिक्षा कराना और सब प्रबन्ध पहले स्वामियों के ठीक से करना । ऐसा सुप्रसिद्ध स्थान कलकत्ता में रहता हुआ त्रिदण्डी संन्यासी वहां पर अपने से पाक क्यों बनावेगा । ज्ञात होता है कि तुम्हारा और उस त्रिदण्डी संन्यासी का कुछ शिखासूत्र का विषय में विवाद भया होगा इससे उनका निन्दा तुमने लिख दिया । इससे कोई भी विचारशील मनुष्य नहीं मान सकता है । कि कलकत्ता में त्रिदण्डी संन्यासी अपने से पाक बनाया और धूनी लगाया । बल्कि सब बुरा कर्म इस समय एकदण्डी करते हैं । इसको जड़ा विचार कर देखो । जिला वरदवान् मोकाम कालना में वि० सं० १६६४ माघ शुक्ल दशमी गुरुवार के पैदल यात्रा करता हुआ मैं आया तो वहां पर गङ्गा के तट पर एक सुन्दर बङ्गालामें चालीस वर्षकी अवस्थावाला एक दण्डी को

पाक बनाता हुआ मैं देखा जो कि बङ्गाली थे । मैंने उनसे पूछा कि आप एक दण्ड कहां लिये थे और यहां पर कितने रोज से रहते हैं । उन्होंने कहा कि काशी में मैं एकदण्डधारण किया हूं तथा दशवर्ष से यहां पर मैं रहता हूं । इसके बाद भागीरथी के तटपर मैं चला गया और पुनः दो घण्टा पर आया तो देखा कि एक छोटा वच्चा एकदण्डीजी का गोदमें खेल रहा है तथा वह एकदण्डी विड़ी पी रहा है और एक तरुणी कुण्डी में भांग बनाती थी । मुझको देखकर वे सब लज्जित हो गये । और भी देखो श्री जगन्नाथ धाम में वि० सम्बत् १९६५ वैशाख शुक्ल एकादशी मंगलवार के एक बूढ़ा उत्कल देशीय पान खाता हुआ एकदण्डी विद्वान मुझको मिला तो उससे मैं कहा कि—

द्रावेतौ समवीर्यौ तु सुरा ताम्बुलमेव च ।

तस्मात्सर्व प्रयत्नेन ताम्बूलं वर्जयेद्यतिः ॥

वायु पु० ॥

इस वाक्यानुसार यतिको पान नहीं खाना चाहिये । इसका उत्तर उन्होंने दिया कि पान मुझसे नहीं छूट सकता है । और देखो काशी तथा प्रयाग के बीच में गङ्गा तटपर टीलाके पास बङ्गाली एकदण्डी रहते हैं । जो की स्त्री रक्खे हैं जिसको वहां के निवासी सब लोग जानते हैं । और मछली बन्दर काशी के एक दण्डियों की शिशु प्रियता समस्त काशी निवासी जानते हैं और कितना मैं लिखू आपलोगों से बढ़कर यदि

दुराचार होगा तो यवन तथा ईसाई मे हीं होगा दूसरे में कभी नहीं ।

विद्वज्ज०—पृ० २५ पं० २२ ॥

देवता प्रतिमां दृष्ट्वा यतिं दृष्ट्वा च दण्डिनम् ।

ऐसा पाठ कई स्थानों में देखा है पर अपनी प्रतिष्ठा के कारण लिखा है कि—

यतिं दृष्ट्वा त्रिदण्डिनम् ॥

चपेटि०—निर्व्वन्द्व ज्ञात होता है कि तुम अपनी प्रतिष्ठा के लिये विद्वज्जन पत्र को लिखा मेरी प्रतिष्ठा तो उस लेख से पहले पूर्वाश्रम में ही थी यह भागवतों को विदित है परन्तु ॥

समानाद्ब्राह्मणो नित्यमु द्विजेत विषादिव ।

अमृतस्येव चाकाङ्क्षे दवमानस्य सर्वदा ॥

नारद० उपदे० ३ मं० ४० ॥

इस मंत्रको अनुसंधान कर तथा ॥

प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा समा गीता महर्षिभिः ।

तस्मादेनां परित्यज्य कीटवत्पर्यटे द्यतिः ॥

नारद० उपदे० ५ मं० ३ ॥

इस मन्त्र के अनुसार भोजराज से सुपूजित स्थान को परित्याग कर पर्यटन करता हूं । इससे मेरे विषय में जो तेरा

कथन है सो भ्रान्तिमूलक है। और कई स्थानों में तुम क्यों देखते हो मैं तो स्पष्ट लिख दिया हूँ कि अत्रिस्मृति में लिखा है कि—

देवता प्रतिमा दृष्ट्वा यतिं दृष्ट्वा त्रिदण्डिनम् ।
नमस्कारमकुर्वाणो नरकं रौरवं व्रजेत् ॥

अत्रिस्मृति० ॥

ऐसा ही शुद्ध पाठ है अत्रिस्मृति में देख लो। यदि दुर्जन तोष न्याय से ॥

यतिं दृष्ट्वा च दण्डिनम् ॥

यही पाठ मान लिया जाय तो भी दण्डिन का त्रिदण्डिन यही अर्थ करना पड़ेगा क्योंकि पहले लिख चुका हूँ कि—

चतुर्धा भिक्षवः प्रोक्ताः सर्वे चैव त्रिदण्डिनः ॥

अत्रि० ॥

इससे साबित हो गया कि कोई दोनों में पाठ मानों अर्थ में तो त्रिदण्डी ही करना पड़ेगा। अतः ॥

यतिं दृष्ट्वा त्रिदण्डिनम् ॥

यही पाठ सज्जन गोष्ठी में आदरणीय है। तुम तीर्थ-ध्वाक्ष के समान काँव काँव किया करो।

विद्वज्जन०—पृ० २६ पं० ७ इतना कह लेख समाप्त करता हूँ ।

चपेटि०—निर्द्वन्द्व तुम तो अपने लेख को समाप्त कर दिया इस लेख से आगे छबीसवां सताईसवां अठाईसवां और उन्तीसवां पेज का लेख क्या तुम्हारा लड़कपन का गुप्तगूँ दिलजान यार लिखा है । याद रखना यह लोक में प्रसिद्ध है कि जिस की बात की ठिकाना नहीं है उसके बाप का ठीकाना नहीं है । सो तुम्हारे में पाया जाता है । क्या इसी बुद्धि से पत्र तुम लिखने बैठ गया । तेरे पत्र को कोई भी विद्वान् सच्चा नहीं मान सकता है ।

विद्वज्जन०—पृ० २६ पं० ८ ॥

विश्वनाथ काशी पुरिमाही ।

जहां दुःख दरीद्र अधनाही ।

चपेटि०—निर्द्वन्द्व झूठ लिखने से काशी का भक्त तुम नहीं हो सकते हो मैं भी बाल्यावस्था से काशी में रहा हूँ और काशी का भक्त हूँ । तो भी तेरा असत्य लेख मुझको अच्छा नहीं मालूम होता है । भला तुम विचार करो कि काशीमें यदि दुःख नहीं होता तो काशी गोदवलिया कवीरचौरा चौक बुलानारा विश्वविद्यालय आदिकस्थानोंमें हस्पताल क्यों बनाया जाता और वहां पर कुष्टी बधिर अन्धा प्लीहा ववासीर ज्वर आदिक रोगवाला मनुष्य कहां से दिखायी पड़ते । तथा हजारों

पति ही न और सहस्रों पुत्र हीन स्त्रियों के रुदन का आवाज काशी में कहां से आती। और काशी में पाप कर्म का फल यदि पापियों के लिये दुःख नहीं माना जायेगा तो शंकरजी में अन्यायित्व दोष लग जायेगा। इससे और प्रत्यक्ष देखने से एक साधारण व्यक्ति भी कह सकती है कि काशी में दुःख है। और जो तुमने लिखा की काशी में दरीद्र नहीं है सो भी झूठा ही लिखा। क्योंकि काशी में जानेवाले यह अनुभव करते हैं कि यदि मैं यहां से जल्दी नहीं हटता हूं, तो ये दरिद्र रोम रोम नोंच लेंगे। जड़ा तुम भी विचार करो कि काशी विश्वनाथजी के पास का गल्ली में जो पड़े पड़े एक एक चावलोंके लिये चिल्लाते हैं जाड़ में थर थरा रहे हैं वे क्या धनी हैं की दरीद्र ही हैं। तुम तो सताईसवां पेज की पन्द्रहवीं पंक्ति में अपने लिख दिया है कि “खर्च विन भाई मम कलम सकुचाती है” तो इस लेख से अपने दरिद्र बन गया। फिर कैसे प्रत्यक्ष से विरुद्ध सावित करोगे की काशी में दरिद्र नहीं है। और यह जो तुमने लिखा की काशीमें अघ नहीं है सो नहीं ज्ञात होता है कि तेरे मतमें अघ किसको कहते हैं। शास्त्रानुसार अघ तो काशी में खूब होता है। जैसे देखो महा अघ गोकसी उस अघको नित्य करने के लिये बड़ा भारी पक्का इमारत बना हुआ है जिसमें कोई चूँ नहीं कर सकता है। तथा ईसाई और यवन कई हजार जिस काशीमें रहकर मद्य मांस पर स्त्री गमनादिक नित्य अघ कर रहे हैं। और वेश्यागमन

करनेवालों के लिये अत्यन्त सुन्दर दालमण्डी नाम के एक महल्ला ही काशी में बना हुआ है। और पाकिटमार विश्व-नाथजी का मन्दिर में भी अपना काम कर लेते हैं। गुण्डा गुरु हां गुरु कहकर चक्कू मार देते हैं। सैकड़ों गर्भपात वहां होते हैं। और एक महा अघ शिशु मैथुन का रवाज काशी में बड़ा जोरसे बढ़ रहा है। इस प्रकार के अनेक अघ काशी में होता है। इसके सिवाय और भी यह अघ होता है कि मूर्ति पूजा नहीं वेदमें लिखी हुई है। मृतक श्राद्ध वेद बाह्य है। साधु ब्राह्मण को नहीं मानना चाहिये। जाति कोई नीच नहीं है। सब वर्णों के साथ रोटी बेटी होनी चाहिये। देवोत्तर सम्पत्ति ले लेना चाहिये यह प्रायः काशी सात सात रोज पर सभा करके आधुनिक सभ्य लोग सुनाते हैं। तो भला विचार करो इससे बढ़कर अघ कहां पर है। इससे ज्ञात होता है कि काशीमें दुःख तथा दरीद्र और अघ है।

विद्वज्जनवि०—पृ० २७ पं० १० लेख समाप्त कर दिया= मूर्ति मधुर उर आनि।

चपेटि०—निर्व्वन्द्व धन्य तेरी बुद्धिकी बलिहारी है कि छवीसवां पृष्ठमें “इतना कह लेख समाप्त करता हूँ” इस प्रकार के लिखकर अपना लेख तुम समाप्त नहीं किया। और पुनः सताईसवां पृष्ठ में लिखते हो की “लेख समाप्त कर दिया” इस प्रकार के लिखकर फिरसे सताईसवां तथा अठाईसवां और उन्तिसवां पृष्ठमें लेख तुमने लिखा। इसी

को देख कर विद्वज्जन विचार कर लेगें की निर्द्वन्द्वाश्रम कितना झूठा है। क्या तुम भङ्ग के तरंग में लेख समाप्त कर फिरसे लिखना प्रारम्भ कर दिया ऐसे के मुखमें थू थू हो।

विद्वज्जन०—पृ० २७ पं० १३ देखि यतीन्द्र धर्ममार्तण्ड छाती तड़फड़ाती है।

चपेटि०—निर्द्वन्द्व उलूक की छाती मार्तण्डको देखकर सर्वदा से ही तड़फड़ाती है। इससे पूर्वोक्त मातण्डको देखकर जो तेरो छाती तड़फड़ाती है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। मुझे तो इस बातका अपशोष है कि कोटि यतीन्द्र धर्ममार्तण्डके तूल्या प्रकाश वाला श्रीभाष्य शतदूषणी वेदान्त वादावली तत्त्वमुक्ताकलाप सर्वार्थ सिद्धि प्रचण्ड मारुति आदिक ग्रन्थको देखकर निर्द्वन्द्वाश्रम उलूक तेरा प्राणान्त ही न हो जाय। इससे मैं चेतावनी दे देता हूँ की उन ग्रन्थों से बचे रहना।

विद्वज्जन०—पृ० २७ पं० १५ खच विन भाई मम कलम सकुचाती है।

चपेटि०—निर्द्वन्द्व तेरा यह लेख पगला के समान है क्योंकि छवीसवांपृष्ठ में तुमने लिखा की काशी में दरिद्र नहीं रहता है। और फिर इस लेखसे विरुद्ध काशीमें रहता हुआ तुमने लिखा की खर्च के विना कलम सकुचाती है। ऐसा पूर्व पर विरोध युक्त लिखनेवाला तुम को सन्तों के सामने मुख दिखाने में लज्जा नहीं आती है। खैर यह ख्याल रखना

तुम अपने को शिव मानते हो इससे गौरीदेवी रंज होकर काशी निवासियोंकी बुद्धि को फेर दिया है कि निर्द्वन्द्वश्रम के लिये खर्च नहीं देना क्योंकि यह पामर मेरा पति बनता है। भला छोटीसी गवर्नमेण्ट है उसके स्थान में कोई दूसरा कहेकी मैं गवर्नमेण्ट हूँ तो वह घोर दण्ड देती है। तो यदि तुम अपने को शिव कहते हो तो घोर दण्ड क्यों नहीं पावोगे। इससे यदि खर्च चाहते हो “शिवोऽहम्” कहना छोड़कर “दासोऽहम्” कहो तब खर्च को कौन कहे रावण के समान सुवर्ण की पुरी मिल जायगी।

विद्वज्ज०—पृ० २८ पं० ११ पूर्वोचार्योंकी निन्दा और खण्डन किया है।

चपेटि०—निर्द्वन्द्व झूठ बोलनाहीं तेरा परम कर्त्तव्य ज्ञात होता है क्योंकि यति के तीर्थादिक दश नाम होते हैं। इस प्रकार के समर्थन करिके शंकराचार्यके आचार्यान्त नामको तुमने खण्डन किया। और “मैं शिव हूँ” ऐसा कहकर शिवको खण्डन किया। और त्रिदण्डी ढोंगी होते हैं ऐसा लिखकर त्रिदण्डी महर्षि याज्ञवल्क्यकी तथा त्रिदण्डी दुर्वासा महर्षिकी निन्दा किया। इससे स्पष्ट साबित होगया की पूर्वोचार्योंकी निन्दा और खण्डन तुमने किया है।

विद्वज्ज०—पृ० २८ पं० १३ इस पत्रके संशोधनकर्त्ता श्रीमान ब्रह्मचारी माधवस्वरूपजी हैं जो ब्रह्मविद्यामें परम निपुण और तपकी मुर्ति हैं।

चपेटि०—निर्व्वन्द्व विद्वज्जन विचार पत्र के क्या संशोधन पूर्वोक्तब्रह्मचारीजी किये हैं। जिसमें संदर्भविरोध पूर्वपरविरोध स्वोक्तिविरोध शिष्टजनविरोध पिङ्गलविरोध संप्रदायविरोध लेख जैसे के तैसे पड़ा हुआ है। जो अपने नामका शास्त्रानुसार संशोधन नहीं कर सका वह ब्रह्मविद्या में परम-निपुण कैसे हो सकता है और पत्रका संशोधन क्या करेगा। इससे काशीके सुप्रसिद्ध किसी विद्वान् से पत्र संशोधन करा लेना आधासे अधिक पत्रमें अशुद्ध है। और पूर्वोक्त ब्रह्मचारीजी से पूछना कि किस श्रुतिस्मृति इतिहास तथा पुराणमें लिख है की ब्रह्मचारी का नाम के अन्तमें स्वरूप लगाना चाहिये। और पहले किस ब्रह्मचारी का स्वरूपान्त नाम था। वस इतना ही पूछने से बालकाभीत धमाकसे गिर जायगा। अब द्वेषको छोड़कर जड़ा अवलोकन करो। जो महानुभाव पांच वर्ष से निरन्तर चान्द्रायण कर रहे हैं। तथा साहित्य और व्याकरण के आचार्य्य परीक्षा पास हैं। और जिनके सैकड़ों शास्त्री तथा आचार्य छात्र पास हो गये हैं। तथा जो कि जिला शाहाबाद मोकाम बक्सर श्री वेङ्कटेश्वर विद्यालय के प्रधानध्यापक हैं वे महामना पं० भगवदाचार्यजी इस “निर्व्वन्द्वमुखभङ्गचपेटिका” को संशोधन किये हैं।

विद्वज्ज०—पृ० २६ पं० १ अनुमोदन कर्ता श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्य श्री १०८ पं० स्वामी भौमाश्रमजी हैं जो अविद्या जन्य अज्ञान को नष्ट करने के वास्ते साक्षात् बोध स्वरूप है।

चपेटि०—निर्व्वन्द्वश्रम अपनी दधि को कौन खट्टा कहेगा काशीमें और कोई अनुमोदन कर्ता मालुम होता है कि नहीं मिला इससे आश्रमनाम वालाको ही तुमने अनुमोदन कर्ता लिखा खैर भौमाश्रमजी को प्रसन्न करने के लिये अविद्या जन्य अज्ञान को नष्ट करने के वास्ते साक्षात् बोधस्वरूप तुमने लिखा तो क्या तेरा उनके सहवास से अज्ञान नष्ट हो गया नहीं नहीं यदि अज्ञान नष्ट हो गया होता तो घोर विरोधात्मक मेरे प्रति तुम पत्र नहीं लिखता इससे ज्ञात होता है कि तुम्हारा अज्ञान नष्ट नहीं हुआ। तो कैसे मान लिया जाय कि भौमाश्रम आज्ञान को नष्ट करने के लिये बोधस्वरूप है। जड़ा “निर्व्वन्द्व-मुखभङ्गचपेटिका” के अनुमोदन कर्ताओं को देख लो। पं० चतुर्भुजाचार्य बम्बई श्रीवेङ्कटेश मन्दिर “दिव्यदेश”। पं० रामचन्द्राचार्य काशी राजघाट। पं० गयादत्तशास्त्री गाजीपुर। पं० धरणीधराचारी अयोध्या। अधिका० रामप्रपन्नरामानुज श्रीवैष्णवदास गया सूर्यकुण्ड। पं० रामप्रपन्नाचार्य जगन्नाथपुरी वासुदेवाश्रम प्रभृति हैं जो कि एक भी त्रिदण्डी नहीं हैं। इस चपेटिका का उत्तर यदि तुमको देना हो तो जिला बलिया पोष्ट० भड़सर मोकाम० नगवा श्रीवेङ्कटेश मन्दिर: वकिल पं० रघुवीर पाठकजी या मुखतार पं० रामाशीस पाठकजी का नाम से देना।

इस “निर्व्वन्द्वमुखभङ्गचपेटिका” को ॥

अदोयदारुप्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम् ।

तदारभस्व दुर्हणोऽनेन गच्छ परस्तरम् ॥

ऋग्वे० अष्ट० ८ अ० ८ सू० १३ मं० ३ ॥

इस मन्त्रमें और ॥

यदार्चमानुषं सिन्धोस्तीरे तीर्णं प्रदृश्यते ।

तदालभ्याथ परं पदं प्राप्नोति दुर्लभम् ॥

शाकलशाखा० ८।८।१३३ ॥

इस मन्त्रमें वर्णित श्रीजगन्नाथ भगवान् की निर्हेतुक दया से जिस पुरुषोत्तम क्षेत्र का विषय में लिखा है कि ॥

नास्ति नास्ति समं क्षेत्रमुत्रमं पुरुषोत्तमम् ।

करुणाकरे नामानं परमं पुरुषं भजे ॥

सप्तद्वीपावती मध्ये सा निध्यं ने दृशं हरेः ।

यादृशं नीलगोत्रेऽस्मिन् व्याजमानवचेष्टितं ॥

मार्कण्डेयै वटे कृष्णे रोहिण्यां च महादधौ ।

इन्द्रद्युम्ने तथा स्नात्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥

इन श्लोकों से प्रतिपादन किया हुआ पुरुषोत्तम क्षेत्र में सत्यासत्य विवेचन के लिये वि० सं० १६६५ ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशी शुक्रवार के समाप्त करके श्रीपुरुषोत्तम के चरणारविन्दों में समर्पण करता हूँ ।

श्रीवत्स वंश कलशो दधिपूर्णचन्द्रम् ।

श्रीकृष्णसूरि पदपङ्कज भृङ्गराजम् ॥

श्रीरङ्गवेङ्कट गुरुत्तम लब्ध बोधम् ।

भक्त्या भजामि गुरुवर्यमनन्त सूरिम् ॥ १॥

इति श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य वेदान्तप्रवर्तकाचार्य श्री-

मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य सत्सम्प्रदायाचार्य जगद्-

गुरु भगवदनन्तपादीय श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्य

स्वामिना सम्पादिता "निर्व्वन्द्वमुखभङ्ग-

चपेटिका" समाप्ता ॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

धन्यवाद

पूना सरदार यह पुस्तक की पूर्ण द्रव्य के सहायता किये हैं इससे इनको धन्यवाद दिया जाता है कि ऐसे ऐसे धर्म में मन लगावे ।

मो० भगवानपुर

पो० नवादा

जि० गया

हाल मोकाम जगदल

पो० २४ परगना

जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स,
नं० ८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट,
कलकत्ता ।

